अधूरी तस्वीर

महेशचन्द्र जोशी

कल्पना प्रकाशन
कृष्ण कुंज बीकानेर

प्रकाशक
कल्पना प्रकाशन
कृष्ण कुञ्ज
बीकानेर

प्रथम संस्करण : दिसम्बर १९७२
मूल्य : पांच रुपये मात्र

मुद्रक
जनसेवी प्रिण्टर्स
निकट प्रकाश चित्र
बीकानेर

कल्पना प्रकाशन अपनी गौरवमयी परम्परा के अनुसार प्रकाशन शृंखला में हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार श्री महेशचन्द्र जोशी का प्रथम संग्रह प्रस्तुत करते हुए गौरव अनुभव कर रहा है।

आशा है सदैव की भांति सुविज्ञ पाठक इसे पसन्द कर अपने सुझावों से अनुगृहीत करेंगे।

—कृष्ण जनसेवी

अधूरी तस्वीर

भारती,

शायद तू मुझे भूल गई होगी । पर मैं तुझे भूल जाऊं, यह सम्भव नहीं । मानती हूं कि शादी के पश्चात् मैंने तुझे एक पत्र भी नहीं डाला, जबकि ससुराल से लौटते ही मुझे यहां तेरा एक पत्र मिला भी था ।

करीब दो माह से मैं यहीं पीहर में हूं । तुझे विश्वास न होगा कि इन दिनों के बीच न जाने कितनी बार तुझे पत्र लिखने बैठी । लम्बे-लम्बे कागज रंग भी डाले । पर जब जब शब्दों से खिंचे उन दिल के भावों को लिफाफे में बन्द करने को हुई, तब दिल चीख उठा, 'फाड़ दे इन कागजों को । मत लिख ऐसी बातें, जिनसे प्यारी सहेली का दिल टूट जाए ।'

इस कारण पत्र लिखकर फाड़ने का क्रम चलता रहा । पर आज ? आज तो मन लगातार कह रहा है–'लिख । सब कुछ लिख दे । उजाला होने से पहले पहले लिख दे ।'

कैसी अजीब बात है भारती, कि जो कुछ मैं तुझे तेरी जिद करने पर न बता पाई, आज स्वयं लिखने को मजबूर हो रही हूं ।

याद है तुझे कि मेरी शादी की सुबह तूने छत पर मां को एक फूलों से भरी डलिया लाकर दी थी । मां ने पूछा था–'भारती, कौन लाया ये फूल ?'

मैं अभी देवेश के कमरों की, मां से पूरी तरह आज्ञा लिये वगैर, सफाई कर ही रही थी कि वह एक ठेले पर समान रखकर सामने ही आ खड़ा हुआ था। मैं लाज के सागर में अपने अस्त-व्यस्त व भीगे कपड़ों को देखकर डूबी जा रही थी कि वह मुस्कराता हुआ बोला था, मेरे लिये इतना कष्ट क्यों कर रही हो शीश।'

मैं उत्तर दिये वगैर झाड़ू और वाल्टी वहीं छोड़कर भीतर अपनी ओर भाग गई थी। न जाने कब तक मैं उसके उस वाक्य को मन ही मन कल्याणकारी मंत्र की तरह दोराती रही थी।

पर शाम को जब देवेश हमारी ओर आ रहा था तो मैं पहले से ही सजधज कर बैठक में आ बैठी थी। लेकिन जैसे-जैसे उसके अपने समीप आने की कल्पना करती जाती थी, वैसे-वैसे दिल की धड़कने भी तेज होती जाती थी।

आखिर कुछ देर बाद बैठक के दरवाजे पर दस्तक हुई। मैं अन-जान सी बनकर बोली थी-कौन ?

"मैं··· — ···देवेश।"

मैंने दरवाजा खोला देवेश मुझे देखते ही मुस्कराता हुआ बोला था-'अरे तुम इतनी बड़ी हो गई शशी।'

क्या तुम अब भी नन्हे मुन्ने से रह गए। कहते कहते मेरी हंसी फूट पड़ी थी।

'तुम तो मुझे नन्हा मुन्ना ही छोड़कर चल दी थी।' कहते-कहते वह भी हंस पड़ा था।

हमारी हंसी सुनकर गीता, रीता और बबलु वहां आ गए थे। मुझे बहुत बुरा लगा था। तभी मैं बोली थी, बैठिये। पिता जी आने वाले होंगे।'

उसका मुस्कराता चेहरा और और मुसकरा उठा था। पर वह

बोला "मैं फिर आऊंगा।" और लौट पड़ा था।

मेरे दिल की खुशी के सूर्य पर बादल का एक टुकड़ा छा गया था।

कुछ दिनों में ही देवेश हमारे यहां बेझिझक आने लगा था। रीता, वीणा और बबलु उसकी ओर बेझिझक जाने लगे थे। मैं और गीता उसकी ओर न जाती थीं। गीता की उदासीनता का तो मुझे पता था कि वह कालिज के किसी सहपाठी से प्रेम करती है। पर मेरा उसकी ओर न जाने का कारण केवल लोक लज्जा ही थी। पर मैं उस समय लोक लज्जा को भी किसी हद तक भूल सी जाती थी, जब देवेश हमारे घर आता या कभी कहीं दूर दीख जाता था।

उस दिन मैं घर में अकेली थी। माता-पिता और गीता पड़ोसी के यहां एक शादी की पार्टी में शामिल होने गए थे। पीछे से रीता, वीणा और बबलु भी न जाने कहां खिसक गए थे।

रात्रि के करीब आठ बजे तक मैं काफी बेचैन हो गई थी। क्योंकि देवेश की ओर भी अन्धेरा था।

मैं अभी बेचैनी में बाहर बरामदे में चहल कदमी कर रही थी कि फाटक पर जाने पहचाने पदचाप के स्वर सुनाई पड़े। मैं पल भर को सिहर उठी, तभी देवेश हंसता हुआ बोला था, 'आज पहरा कैसे दे रही हो ?'

'और क्या करें ? किसी का पता ही नहीं है। सब अपनी अपनी मस्ती में मस्त हो रहे हैं।'

''क्या तुम घर में अकेली हो ?

''अकेली।········ नहीं।··········और कोई भी मेरे पास है।' मैं हंस पड़ी थी। यह सुनते ही देवेश ने मेरे हाथ पकड़ लिये थे। मैं कुछ न बोली थी। फिर दूसरे ही क्षण कुछ सोच कर मैंने अपने हाथ उसके हाथों से खींच लिये थे। तभी वह गम्भीरता से बोला, 'शशी पता नहीं मैं कभी—कभी मन पर एक बड़ा बोझ सा अनुभव करता हूं ?

क्या दुःख है तुम्हें ?' मैं बैचेनी से बोली।

'समझ नहीं पड़ता ऐसे जिन्दगी कब तक कटेगी एकाकीपन काटने को आता है। क्या तुम्हें मेरी अन्धेरी जिन्दगी में कोई किरण नजर नहीं आती ?'

यह सुनते ही मैं फफक कर रो पड़ी। देवेश के कंधे को कुछ देर तक अपने गर्म--गर्म आंसुओं से भिगो कर, मैं केवल यही कह पाई कि देवेश मैं स्वय मझधार में पड़ी हूं। मुझे चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई देता है।...........

'तो अपनी इस अधूरी तस्वीर को पूरा कर दो।

'क्या मतलब ?'

'कल मेरे यहां आना।.........बताऊंगा।'

मैं खामोश रही।

पर न जाने कैसे मैं अगले दिन दोपहर को, बबलु को साथ लेकर, पीछे के दरवाजे से देवेश की ओर पहुंची थी। वह एक आरामदार कुर्सी पर बैठा सिगरेट के कश पर कश ले रहा था हमें देखते ही वह चौंक पड़ा था। तभी आश्चर्य भरे स्वर में बोला क्या आज जान लूं कि सूरज पश्चिम से भी निकल सकता है ?

मुझे हंसी आ गई। मुझे हंसता देख कर बबलु भी हंस पड़ा।

कुछ देर की खामोशी के बाद मैं बोली 'जरा अपनी कला का नमूना तो दिखाओ। तुम्हारी चित्रकारी की सफलता पर तो काफी कुछ सुन चुकी हूं।'

'मेरी कला की सफलता एक तस्वीर के अधूरेपन पर टिकी है शशि।'

'तो उसे पूरा कर लो।'

'पर तुम्हारे सहयोग के बिना यह सम्भव नहीं है।'

'सहयोग ! कैसा सहयोग ?......... मैं तो कला के विषय में कुछ जानती ही नहीं हूं। ...... आखिर दिखाओ तो वह अधूरी तस्वीर कौन सी है, जिसे तुम इतनी महत्ता दे रहे हो ?'

आओ। .... मेरे साथ आओ।' कहकर देवेश मुझे दूसरे, कमरे में ले गया। कुछ ही देर में, सामने कैनवास पर पड़े एक पर्दे को उलट कर वह बोला। देखो यह है वह अधूरी तस्वीर, जो ....।'

'यह क्या ?...... ...यह तो तुमने मेरी तस्वीर बना दी है।...

'हां, तुम्हारी तस्वीर है यह तभी तो तुम ही इसके अधूरेपन को दूर कर सकती हो।'

कुछ देर तक तो मैं उस अपनी तस्वीर को देखकर नेक अच्छे बुरे विचारों में खोई रही थी पर फिर बोल पड़ी, अधूरी कहां है ? पूरी तो हो गई है। ....

'कैसे ?... .....ना माग मे सिन्दूर है इसके। ना माथे पर बिंदी, ना हाथो मे चूड़िया और ना नाक मे नथ।'

मुझे लगा जैसे हजारो बिजलियां मेरे ऊपर गिर गई हैं। मुझे सारा संसार आंखो के सामने घूमता, दिखाई दिया। मैं फिर पल भर भी वहां खड़ी न रह सकी। तुरन्त पीछे के दरवाजे की ओर भागी। और सीधी अपनी चारपाई पर जाकर गिर गई थी।

दूसरे दिन से मैंने देवेश से मिलने की सोची, पर न जाने क्यो उसे देखे बगैर, उससे बातें करें बगैर, एक-एक पल काटना भारी पड़ गया था।

आखिर थोड़े समय बाद हम एक दूसरे से फिर मिल गए थे। फिर बातें करने लग गए थे। लेकिन न जाने क्यों हमारे बीच झिझक का एक झीना सा पर्दा टंग गया था। हमारे मिलने में वह रस न था, जो उसकी ओर जाने से पहले था।

दिन गुजरे। मेरी शादी का दिन निश्चत हो गया। बारात आने के एक दिन पूर्व मैं अकेली देवेश की ओर गई। करीब एक सप्ताह से मैं उससे न मिल पाई थी।

दिन ढल चुका था। देवेश कमरे में फैले हल्के नीले प्रकाश में, आरामवाली कुर्सी पर लेटा सा सिगरेट फूंक रहा था। पास में एक छोटी मेज पर रक्खे एक प्याले से भाप उड़ रही थी। प्याले की ओर संकेत करते हुए मैं मुसकराने का प्रयास करती हुई बोली, 'चाय पी जा रही है क्या ?'

देवेश चौंका। मेरी ओर आश्चर्य भरी दृष्टि से देखता हुआ बोला–

'हां।'

'मैं भी चाय पीऊंगी चाय।' कहकर मैंने हंसते हुए उसका चाय का प्याला उठा लिया। अवाक रह गई, जब मैंने देखा कि वह बिना दूध की बहुत तेज रंग ली हुई चाय है।

'मुझे चुप देख कर वह बोला

'पीयो चाय ?'

'यह तो जहर है।·········तुम यह क्या कर रहे हो देवेश ?'

'जहर पचाने की ही कोशिश कर रहा हूं।······तुम इसे पचाने में असमर्थ हो। लाओ, प्याला मुझे दे दो।'

'नहीं।' कह कर मैंने चाय, तनिक खिड़की खोलकर, बाहर फेंक दी थी।

'क्या वास्तव में तुम मुझे नहीं जीने दोगी ? वह गम्भीरता से बोला।

'देवेश ऐसा न करो। भगवान के लिये ऐसा न करो।······'कहते कहते मेरी अश्रुधारा फूट पड़ी थी। देवेश खामोशी से सिगरेट फूंक रहा था और मैं कुछ देर बाद वहाँ से, मन पर बोझ लिये, अपनी ओर आ गई थी।

वह रात बहुत कठिनाई से कटी थी, भारती।

अगले दिन तुझे मालूम ही है कि देवेश खामोशी से फूलों की डलिया दे गया था। बाद में पता चला कि पिता जी के कहने पर वह वे फूल लाया था।

तेरा उस दिन बिना सोचे समझे हँसते रहना, शायद यह विचार कर कि देवेश का और मेरा सम्बन्ध केवल जवानी का उफान मात्र है, मुझे अच्छा न लगा। मैं नहीं चाहती थी कि कोई मेरे दिल की गहराई को छू ले। मेरे दिल के घाव को देख ले, इसलिए, मैंने होंठ सी लिये थे और तभी तुम सब मुझे बली के बकरे की तरह सजाते रहे थे।

लोग आते और चले जाते थे। कोई मेरी ऊपरी सजावट को सन्तोषजनक बताता था तो कोई असन्तोषजनक, पर कोई यह देखने का प्रयत्न नहीं करता था कि मेरे दिल की सजावट कैसी है? सोचा था देवेश आयेगा वही सच्चाई को समझ पायेगा? पर वह न आया था। हाँ उसकी बनाई वह अधूरी तस्वीर भेंट स्वरूप आई थी, जो मुझे तिल-तिल जलाती रही।

आखिर, मेरे दरवाजे पर शहनाई का 'शोर' गूंज उठा जो मुझे तीर की तरह चुभ रहा था। सोचा चीख कर कह दूं, बन्द कर दो यह प्राण लेवा शोर, पर पिता जी के मुख पर पूर्ण विश्वास और उनकी मजबूरी के साथ, मैं दुखदायी खिलवाड़ न कर सकी। इसी कारण मैं तेरे और अन्य स्त्रियों के सहारे मंडप तक आ गई थी। पर हवन की अग्नि मुझे श्मशान में जल रही अग्नि से भी भयंकर डरावनी लगी थी। तब मन में आया था कि उतार दूँ इस झूठे चोले को और चीख कर कह दूँ—'बन्द करो यह राग। इस चलती-फिरती लाश को ले जाने से बेहतर है कि इसे इसी अग्नि में झोंक दिया जाए।' पर फिर पिता जी का ख्याल आते ही मैं खामोश रही। तभी उस दिन मेरी दादी की लालसा पूर्णी इस तरह से पूरी हो गई, जैसे साधारणतया हो जाती है।

उसी दिन काफी रात को मैं अकेली छत पर गई। देवेश की ओर अन्धेरा देख कर मैं और अधिक व्याकुल होने के साथ-साथ घबरा भी उठी थी। मन को, तसल्ली दी कि देवेश सो गया होगा। पर वह न माना। कुछ क्षणों पश्चात् कहीं दूर से टन ! टन ! टन ! का स्वर कानों पर पड़ा। 'तीन बज गए।' मन ही मन बुदबुदाई। तभी नीचे से मां ने पुकारा, 'शशि, ऊपर कमरे से कम्बल लेती आना।'

'अच्छा।' कह कर मैं कमरे की ओर बढ़ी ही थी कि पास की गली में किसी के लड़खड़ाते स्वर में, कोई दर्द भरा गीत सुनाई पड़ा। घबरा कर छत की दीवार से तनिक झांका तो अवाक् रह गई, जब मैंने लैम्प-पोस्ट की रोशनी के नीचे देवेश को लड़खड़ाते और गाते हुए, देखा था। पीड़ा के साथ–साथ मन क्रोध से भी भर गया था। सोचा जाते ही उसके लम्बे बाल पकड़ कर पूछूं–'तुम इन्सान हो या हैवान······तुम्हारी सभ्यता और तुम्हारी संस्कृति अब कहां छुप गई है ?······' पर जब देखा कि उसने बड़ी कठिनाई से अपने मकान का दरवाजा खोला है। फिर बंद किया है। भीतर आकर कई चीजों से टकराने के बाद रोशनी की है, तो अब क्रोध उस पर न आकर स्वयं पर आने लगा था।

दिल अभी पीड़ा की अग्नि से झुलस ही रहा था कि देवेश के लड़खड़ाते कदमों के साथ-साथ उसका लड़खड़ाता स्वर कानों पर पड़ा, 'शशि······गई। ससुराल······गई।······शादी हो······गई······। हो ······गई······शादी उसकी। मुझे लगा जैसे कोई गर्म-गर्म शीशा पिघला कर मेरे कानों में डाल रहा है। तभी मैंने कानों में अंगुली डाल ली। आंखें मूंद ली थी। एक दो पल बाद जैसे ही आंखें खोली कि तभी देवेश को, आंगन में पड़ी एक नंगी चारपाई पर औंधे मुंह गिरता देख कर मेरे मुंह से एक चीख निकल गई थी।

मां दौड़ी हुई ऊपर आई। मेरे चेहरे पर उस सर्द रात्रि में भी पसीने की बूंदें देख कर घबराती हुई बोली–'क्या हुआ तुझे ?'

'कुछ नहीं। कुछ नहीं।' कह कर मैं साहस बटोर कर, मां को चलने का आग्रह कर, नीचे आ गई थी।

नीचे आते ही मैं पलंग पर कटी हुई टहनी की तरह गिर गई और अपनी कमजोरी पर पछताती रही।

प्रातः हुआ। वही पिछले दिन की सी चुभती चहल-पहल। वही शोर गुल। सोचा जाते जाते देवेश को एक निगाह भर देख लूं। पता नहीं फिर मिल सकूंगी या नहीं। पर आंख उठाते ही प्रतीत होता था जैसे पलकों पर पहरे बिठा दिये गए हों। आखिर देवेश से मिले बगैर ही ससुराल चली गई।

दुर्भाग्य से ससुराल भी कलह का जीता-जागता नमूना मिला। तेरे जीजा जी, अपनी शादी का कर्ज अपने बड़े भाई को किस्तों में चुकाने के लिये परेशान थे। मैं दिन भर न खत्म न होने वाले कार्य को करते करते परेशान थी। उस पर भी सास और जेठानी की झिड़कियां—पता नहीं कहां से पागल छोकरी को घर में ले आया। कभी दाल में नमक डालती ही नहीं जब डालती है तो इतना कि जैसे इसके बाप ने दहेज में नमक की बोरियां दी हों।......

उन जहर में डूबे शब्दों को सुन-सुन कर मैं होंठ भींच लेती। आंखें फेर कर आंसू गिरा देती।

इस तरह एक एक पल, एक एक युग की तरह काट कर, मैं एक सप्ताह वहां रह कर, पीहर लौट आई।

यहां आते ही जब सुना कि देवेश मेरे पीछे एक ही बार, वह भी थोड़े समय के लिये हमारी ओर आया था, तो दिल में जाना पहचाना दुःख एकदम उमड़ पड़ा। सोचा खुद जाकर उससे मिल लूं। पर जब जब उसकी ओर बढ़ाती, तो बीच रास्ते से ही वापिस मुड़ जाती थी। इस कारण स्वयं पर झुंझलाती रहती थी।

काफी प्रतीक्षा के बाद, मेरे ससुराल से लौटने के दो दिन बाद देवेश हमारी ओर आया था। मैंने बैठक के बराबर वाले कमरे की एक खिड़की से उसके रूखे-सूखे चेहरे को देख लिया था। पर फिर भी मैं बैठक में न आई थी।

उसके बैठक में आते ही वीणा के साथ बैठा बबलू उछलता हुआ बोला, 'देवेश भैया, मेरी शशि दीदी आ गई हैं।......बुलाऊँ ?'

'नहीं। वह खुद आ जायेगी।'

देवेश का एक विश्वास भरा स्वर पर्दे के पीछे, दिवार से चिपके हुए, जब मैंने सुना तो स्वयं को धिक्कारने लगी थी। मन में उठे उस संघर्ष के बीच बबलू दौड़ा दौड़ा मेरे पास आया, धीरे से बोला, 'दीदी देवेश भैया बाहर बैठे हैं और आप......।'

मैंने उसके मुँह पर एक हाथ रख कर उसे आगे न बोलने दिया।

पर वह मेरी साड़ी खींच कर मुझे बैठक में ले ही आया तो मैं एक अपराधिनी सी देवेश के सामने पलकें झुकाए खड़ी हो गई थी।

'ठीक हो ?' देवेश का उखड़ा—उखड़ा सा स्वर कानों पर पड़ा।

'हां। —...तुम......?'

'सामने हूं।' कह कर देवेश ने सिगरेट सुलगा ली।

मैं उसका रूखा-रूखा चेहरा अधिक समय तक न देख सकी थी इसलिए कुछ ही देर बाद उससे आज्ञा मांग कर भीतर चली गई थी।

दो तीन दिन की फिर खामोशी के बाद जब मुझे यह प्रतीत होने लगा कि अब देवेश सचमुच मुझे पराया समझने लगा है और अपनी जिंदगी के प्रति भी उदासीन रहने लगा है, तो मैं यकायक घबरा उठी थी। अनेकों शंकाओं ने मेरे मन में जन्म ले लिया था।

अब मौका ढूंढ कर मैं उसे समझाती थी। पर एक दिन मेरे

कहने पर 'कि वह क्यों एक उजड़े व्यक्ति की तरह जीवन काट रहा है' तो वह बोला 'कि अब बसने को रह ही क्या गया है ?'

भोजन कर लेने की याद दिलाई तो बोला, 'अब जीने से लाभ ही क्या है ?'

जब बोली, 'यूँ शरीर को कष्ट देकर कुछ न पाओगे देवेन।'

तो टूटे हुए स्वर में उसने कहा, 'पाने को अब रह ही क्या गया है ? लुट तो चुका हूँ बीच बाजार में।'

उसके उत्तर सुन-सुन कर मैं आंसुओं का दरिया बहाती रही, पर वह दरिया के बीच अड़े खड़े पत्थर की तरह न पिघला।

इस तरह पीहर में मैंने एक लम्बा समय काट दिया। तेरे जीजा के पत्र बराबर आते रहते, 'जल्द आओ।' पर मैं ससुराल और पीहर वालों को कभी कोई बहाना बना कर और कभी कोई बहाना बना कर मनाती रहती। पर सत्य यही था कि मैं देवेन की दिन प्रतिदिन बिगड़ती दशा देख कर, उसे छोड़ कर चला जाना अपनी शक्ति से बाहर की बात समझती। आखिर एक दिन पिताजी मुझ पर गरज पड़े, 'क्या तू ससुराल नहीं जायेगी ? तुझे पता नहीं कि वे लोग बेहूदी बातों पर उतर आए हैं।'

मैं माँ की गोद में सिर छुपा कर रो पड़ी और रोते रोते ही मैंने ससुराल में घटी सारी दुःखद घटनायें सुना दी थीं। तभी माँ के गर्म-गर्म आंसू मेरे गाल पर गिरने लगे। रोते हुए वे पिताजी पर भर्राए स्वर में गरजीं, 'और दो अपनी बेटियों को ऊँचे खानदान में।'' '''तभी मैंने साफ-साफ कह दिया था कि खानदान-वानदान का चक्कर छोड़ कर मुख्य बात यह देखो कि लड़का कैसा है ? उसकी स्वयं की स्थिति क्या है ?'''' ''

'हाय री किस्मत।' पिता जी, माथा ठोकते हुए बोले, 'सच ऊँचे खानदान के चक्कर में पड़ कर मैंने अपनी बेटी का ही गला घोंट दिया है।''''''अब कभी खानदान-वानदान, जाति-बिरादरी के चक्कर में न पड़ूँगा।'''''

मैंने सन्तोष की एक सांस ली। पर कल उस सन्तोष की सांस से भी लपटें निकलने लगीं, जब माता-पिता ने मुझे एकान्त में बुलाया। धीरे से पिताजी ने कहा, 'हमने तय किया है कि देवेश के साथ गीता की शादी कर दें।

मेरे बड़े कठिनाई से खामोश रहने पर पिता फिर बोले, 'कल होली है। हमने उसे हमारे घर आने का विशेष तौर पर निमन्त्रण दिया है, बातों बातों में उसकी राय ले लेना ताकि ......' मैं आगे कुछ न सुन पाई और खून की घूंट पीती हुई दूसरे कमरे की ओर बढ़ गई।

आज काफी दिन उगे देवेश आया। मैं बैठक में बैठी थी। मुझे देखते ही वह बोला, 'क्या मैं अन्दर आ सकता हूं ?'

'आइये।......यह नई भाषा कब से सीख ली है तुमने ?'

'सीखी नहीं। सिखाई गई है।'

वह हँसा। आरती, यदि उस हँसी को निचोड़ा जाता तो उसमें से एक बूंद रस भी न टपकता।

तभी कहीं से रंगों से भरे हुए, वीणा और बबलू वहां आए थे।

देवेश को देखते ही बोले, 'आज तो हम, भाई साहब को भूत बना देंगे।'

'और भूतनी।' देवेश तुरन्त बोला।

'शशि दीदी को।' बबलू बोल पड़ा।

सब हँस पड़े। तभी पिताजी वहां आ गए थे और मैं उठ कर भीतर चली गई थी।

कुछ देर बाद चाय नास्ता लेकर लौटी तो देखा कि देवेश रंग बिरंगे चेहरे में धंसी आंखों से, मेरी शादी के बाद का खिचा हुआ रंगीन चित्र देख रहा था, जिसमें मेरी मांग में सिंदूर, माथे पर बिंदिया, हाथों की चूड़ियां

और नाक की नथ स्पष्ट झलक रही थी ।

एकाएक दिल कांप उठा और साथ-साथ हाथ भी । बड़ी कठिनाई से ट्रे सम्भाल पाई थी । पता नहीं किसने आज सुबह वह चित्र मेरे ट्रंक से निकाल कर बैठक में टांग दिया था ।

मेज पर ट्रे रख कर मैं खामोशी से चाय बनाने बैठ गई । तभी देवेश उखड़े स्वर में बोला-'शशि, मैं समझ नहीं पाता कि मैं इन्सान हूं या हैवान ?'

'ऐसी शकाओं में क्यों पड़ते हो ?······ ऐसा न सोचा करो ।'

'क्यों न सोचूं ? ···· आप लोग मेरी इतनी सेवा करते हो और मैं कुछ भी नहीं कर पाता ।'

'सोचा उसे सेवा करने का मौका दे दूं । गीता से शादी कर लेने की बात कह दूं । पर जीभ तालू से चिपक गई । बस खामोशी से मैंने चाय का प्याला उसकी ओर बढ़ा दिया ।

कुछ देर बाद चाय के दूसरे दौर में मुझे कुछ शरारतें सूझी । मैंने देवेश से कहा, 'देखो ! देखो ! तुम्हारा चेहरा कितना रंग बिरगा कर दिया है । बच्चों ने । साफ कर दूं ?'

'कर दो ।' वह भोलेपन से बोला । मैंने फुर्ती से आंचल में छुपाया, गुलाल भरा हाथ, उसके चेहरे पर मसल दिया । उसे जब मेरी शरारत का पता चला तो उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और एकटक मुझे सूखी सूखी निगाहों से देखने लगा । किसी की आहट सुन कर मैं चौंक पड़ी थी । तुरंत धीरे से बोली, 'देखो, कोई आ रहा है ।' यह सुनते ही उसकी पकड़ ढीली पड़ गई । दूसरे ही पल मैं भाग पड़ी । पर कुछ रास्ता तय करते ही मेरा पैर साड़ी से उलझ गया और मैं सिर के बल एक चौखट पर आ गिरी । माथे से खून की धारा फूट पड़ी । देवेश चिल्लाया, 'यह क्या हुआ ?'

और लपक कर मेरे पास आया। उसने अभी मुझे अपनी बाहों का सहारा देकर एक हाथ से खून की धारा रोकने का किसी हद तक सफल प्रयास किया ही था कि तभी, भीतर से माँ और गीता वहाँ आ गए थे और स्थिति स्पष्ट होते ही चीख उठे, 'यह क्या······?'

देखते–देखते मेरे माथे पर पट्टी बंध गई और मैं चारपाई पर लेटा दी गई। न जाने, कब मेरी बेहोशी के कारण आंखें बंद हो गईं। पर जब खुलीं तो देवेश और पिताजी मेरे सामने बैठे थे।

'कैसी तबियत है, बेटी अब तुम्हारी ?' पिताजी करुण स्वर में बोले।

'ठीक हूं।······चाय मंगा दो।'

'अभी तुम दोनों के लिये चाय बनवा देता हूं।' कहते हुए पिताजी उठे और भीतर की ओर चल पड़े।

'तुमने खाना खा लिया ?' मैंने देवेश की ओर देखकर कहा।

'तुम्हारे बिना ही।' वह धीरे से मुसकराया।

'अब मेरी चिन्ता न करो देवेश।'

'तो किसकी करूँ ?'

'उसकी, जो······मैंने तुम्हारे लिये ढूँढ रखी है।'

'वह कौन······?'

'मुझ से लाख गुनी अच्छी······दिखाऊँ।'

वह हँसा। यह सोच कर कि वह मेरी बात को मजाक समझ रहा है। बड़ी कठिनाई से मैं उसके इन्कार करने पर भी चारपाई से उठी और साहस कर एक आलमारी से गीता की फोटो निकाल कर उसके समीप लाई। अभी तक उसके चेहरे पर हँसी ही बिखरी पड़ी थी। पर जैसे ही मैंने यह कह कर कि यह है तुम्हारी अंधेरी जिन्दगी

का चिराग, वह फोटो उसके हाथ में थमाई, तो मेरा हृदय तेजी से धड़कने लगा। पर फोटो को देखते ही उसके चेहरे के बदलते रंगों को देखकर मेरे पूरे शरीर में कंपकंपी की एक तेज लहर दौड़ गई। मैं तेजी से भीतर आंगन की ओर बढ़ी तो देखा माता-पिता मुस्करा रहे थे। पर दूसरे ही पल वे मेरे इस तरह चलने फिरने पर आपत्ति भी करने लग गए थे।

कुछ देर बाद में चाय के दो प्याले लेकर कमरे की दहलीज तक ही आई थी तो यह देखकर कि जिस कुर्सी पर देवेश बैठा था वह खाली है, अवाक् रह गई। दोनों प्याले हाथ से छूट कर चूर-चूर हो गए, और मैं बड़ी कठिनाई से अपने को दीवार के सहारे टिका पाई थी।

माता-पिता ने आग्रह किया कि मैं लेट जाऊं, पर मैं एक विस्फोटक स्थिति से प्रभावित होकर अपनी मूर्खता पर झुंझलाती हुई बिना उत्तर दिये न जाने किस शक्ति से देवेश की ओर दौड़ गई। वहां पहुंचकर जब मैंने देखा कि देवेश पागलों की तरह जो हाथ लग रहा है वही ट्रंकों में डाल रहा है, तो मैं चीख उठी, 'यह क्या हो रहा है देवेश ?'

देवेश ने फटी फटी आंखों से मेरी ओर देखा। फिर टूटे स्वर में, बोला– 'जिसकी कल्पना न की थी।' और फिर वह अपने कार्य में लग गया।

'रुक जाओ देवेश। रुक जाओ।' मैं कई चीजों का सहारा लेकर उसके समीप पहुंचती हुई विनती भरे स्वर में बोली।

'क्यों ?'······क्या और कोई नया नाटक खेलना, बाकी है मेरे साथ ?'

'नाटक।······ कैसा नाटक।······ देवेश यहां के एक-एक जर्रे से पूछ लो कि मैंने तुम्हारे अलावा किसी और को नहीं पूजा है। किसी को नहीं।'

दस रुपये का नोट

'आ गए आप ?' पत्नी कुछ भारी स्वर में बोली।

'हां, आ ही गया हूं। तनिक भारी मन से आश्चर्य भरे स्वर में मैं बोला— 'क्यों क्या बात है ?'

'स्कूटर की आवाज नहीं आई।.........'

'पेट्रोल खत्म हो गया है।'

'तभी इतनी देर कर दी ऑफिस से आने में, जबकि आपको जल्दी आना था।'

'बात क्या है।...... क्या किसी की अर्थी उठ रही है ?'

'क्या हमेशा अपशकुनी बात करते रहते हो ! कभी खुशी की बात भी सोचा करो।'

'खुशी की ?......बोलो किसके यहां लड्डू पूरी उड़ाने जाना है?' मैं हंसा।

'मिस्टर खन्ना के यहां।' पत्नी मुस्कराई।

'मिस्टर खन्ना।......सप्लाई आफिसर......।

'जी जनाब।'

'किस खुशी में ?'

'उनके एक मात्र पुत्र के बर्थ-डे की खुशी में।'

'बर्थ डे।......इसका अर्थ हुआ कि कुछ प्रजेन्ट भी देनी होगी

इसमें डाक बरा है ! बस अब ज्यादा बहस में न पड़ कर जल्दी से एक पचड़ी परसेन्ट ले श्रापो । स्कूटर में पेट्रोल भी डलवाते आना । मैं तो तैयार हो गई हूं । बच्चों को तैयार कर रही हूं । ······उनके श्राफिस का चपरासी छः बजे तक आने का कह गया था । ······ग्रभी श्राधा घण्टा है । जल्दी जाओ ।' कह कर पत्नी चली गई । मैंने पेन्ट के पीछे की जेब से पर्स निकाला । खोला । मैं घबरा गया, जब उस पच्चीस रुपये के सुन्दर से पर्स में एक नोट निकला, वह भी दस रुपये का । सामने कलेन्डर पर दृष्टि डाली तो तारीख निकली बाईस । समझ न पड़ा, जब पांच सौ के आसपास वेतन पाने वाले व्यक्ति का यह हाल है तो इससे कम पैसा पाने वालों का क्या हाल होता होगा ।···इससे तो अच्छा यह था कि घर का खर्चा पत्नी के हाथ मे ही रहने देता । ख्वामख्वा इस माह घर का खर्च अपने हाथ मे ले लिया ।······ वह पैसा बचाती भी कैसे ? आखिर स्कूटर लोन, फर्नीचर लोन और भारी मकान किराया देने के बाद बचता ही कितना है ? तिसपर महीने में दो तीन बार बड़े बड़े लोगों की पार्टी का आयोजन । ······ऊपरी आमदनी का कोई जरिया है नहीं । आखिर 'मुर्दे, ऑफिस का मुर्दा सुपरिन्टेडेन्ट जो हूं ।······ फिजूल में मैंने इस माह वेतन मिलते ही पत्नी को बुरी तरह फटकारा— 'तुमसे पैसा पैसा तो बचता नहीं है । अब पे मेरे पास रहा करेगी ।······ बैंक में न जाने कब से पांच रुपये पड़े हैं ।'

दस रुपये के नोट को देखता हुआ न चाहकर भी मैं आराम कुर्सी पर लेट गया हूं । न जाने कितनी इच्छायें छुपी पड़ी है कागज के इस छोटे से टुकड़े में । कुछ तो ऐसी है कि यदि उन्हें तुरन्त पूरा न किया गया तो घर में विस्फोट हो जाने का खतरा है । मसलन पत्नी के गाउन की सिलाई, राजेश के तीन वर्ष बाद सप्लीमेन्ट्री के पास होने की पार्टी, बीना को छेड़ने वाले लड़के के खिलाफ कोर्ट मे की गई रिपोर्ट के लिए वकील की फीस, इसके अतिरिक्त रोज के बंधे बंधाए खर्च, जिनमें से अधिकतर स्टेन्डर्ड मेनटेन करने के लिए करने पड़ते हैं । जैसे अभी अभी प्रजेन्ट लाना । आवश्यक है ।

······आखिर मिस्टर खन्ना सप्लाई आफिसर हैं। कभी भी काम आ सकते हैं। काम आए हैं। आखिर बड़ी कठिनाई से उनसे, उनके स्तर तक अपना स्तर दिखलाकर मित्रता की है। उसी हैसियत से प्रजेंट भी देनी होगी। पर दूं कैसे ? जानता हूं कुल मिलाकर 'नकदी' की हैसियत इस समय केवल दस रुपये की है।

ज्यादा की हो भी कैसे सकती है। सदा इसी चिन्ता में डूबा रहता हूं कि कहीं अपने बनाए इस स्टैन्डर्ड में जरा भी लचीलापन न आ जाए, बढ़ोतरी भले ही हो जाए। नहीं तो लोग क्या सोचेंगे ? क्या कहेंगे ?

उस दिन जल्दी टूटी प्रेस का सूट पहनकर ऑफिस के लिये रवाना हो गया था। रास्ते में पान की दुकान पर मिलने वाले मित्रों ने ताने कम हीं दिये थे– 'अरे वर्मा जी आज ऐसे कैसे ? सूट पहन कर ही सो गए थे क्या ?··· एक जोर का ठहाका। कुछ देर बाद दूसरा ठहाका—'वर्मा जी इतना पैसा न जोड़ो कि दूसरों को सांस गिरवी रखने तक कि नौबत न आ जाए। प्रेस में लगता ही क्या है ······'

तब मैं खिसिया कर तुरन्त स्कूटर में बैठ गया था। लग रहा था स्कूटर जमीन पर नहीं जमीन में धंसता जा रहा है। ऑफिस आकर मैं उठते बैठते, चलते फिरते किसी को समीप न देख कर एक दृष्टि अपने सूट पर डाल लेता। कोई बाबू या कोई चपरासी मेरी ओर देख लेता तो मुझे लगता कि वह अवश्य मन ही मन मेरे पर हंस रहा है। आखिर स्वयं पर झुंझलाहट की सीमा इतनी बढ़ गई थी कि मैं अपने मस्तिष्क का संतुलन ही खो बैठा था। एक बाबू ने मेरे सामने खड़ा होकर मुझसे कुछ पूछा तो मैं उसकी पूरी बात सुनने से पूर्व ही उस पर टूट पड़ा था– 'नहीं ! नहीं, यह सूट आज ही सूटकेस से निकाला है। गर्मी शुरु होते ही ड्राईक्लिनिंग करवाकर रख दिया था।······' पूरा स्टाफ हंस पड़ा था। 'साइलेन्ट।' मैं गरजा था। तभी मैंने क्रोध भरी दृष्टि से सबकी ओर देखा था। फिर

.क उसकी दृष्टि अपने सूट पर डाली थी। तभी सामने खड़ा बाबू घबराए वर में बोला था– 'मैं ·····मैं तो आबजेक्शन लगे अपने टी० ए० बिल के वेषय में कह रहा था सर।' तभी हंसी का फव्वारा उस कमरे में फिर फूटा था। पर मैंने खामोशी से सिगरेट सुलगाई थी और अपने पागलपन र पछताता हुआ पास में पड़ी फाइल के पन्ने उलटता रहा था।

मैं खुद की ही साउन्ड पोजीशन नहीं दिखलाना चाहता, बल्कि अपने पूरे परिवार की दिखलाना चाहता हूं।

करीब दो माह पूर्व की ही तो बात है कि मैं ऑफिस में चाबी ले आना भूल गया था। मैंने एक चपरासी को घर चाबी लेने भेज दिया था। शाम को घर लौटा तो, ऑफिस समय में अधिकतर मौज करने व सुबह शाम घर पर कार्य करने वाले चपरासी ने शिकायत भरे स्वर में मुझसे कहा था, 'साहब, मंगलू, बहुत दुष्ट आदमी है।'

'क्यों? क्या बात हुई?'

'आज आपने उसे चाबी लेने भेजा था न·······?'

'हाँ, तू था नहीं। उसे ही भेज दिया।·······क्या बात हुई?'

'चाबी लाने के बाद वह ऑफिस के कुछ बाबुओं व चपरासियों के बीच कह रहा था कि साहब की पत्नी तो घर में बर्तन मांज कर पैसे बचाती हैं और वे अपने जूते को टो में धूल का कण भी नहीं बैठने देते।'

'अच्छा। उस नालायक की इतनी हिम्मत!' मैं गरजा, 'कल देखूँगा उस बेईमान को।'

'इतने पर ही मुझे शान्ति न मिली थी। तनिक शान्ति तब मिली, जब बड़े पिंजड़े में बन्द शेर की तरह, मेरे, कमरे में कुछ देर चक्कर काटने के बाद, चपरासी किसी काम से बाजार चला गया था। पिंजरे से निकले शेर की तरह मैं पत्नी पर गरजा था, 'नाक काट कर रख दी तुमने आज मेरी।'

'हुआ क्या ?' पत्नी के माथे पर भी सलवटें पड़ गई थीं।

'सुना नहीं मंगतू ने क्या कहा आज ऑफिस में ?'

'सुन लिया।......तो इसमें क्या हो गया ? घर में सभी वर्तन मांजते हैं। मैं किसी दूसरे के घर तो वर्तन नहीं मांज रही थी।'

'आखिर उसने देख कैसे लिया तुम्हें वर्तन मांजते ?'

'बाहर दरवाजे के पास लगी सीमेंट की जाली से देख लिया होगा उसने मुझे, आंगन में, नल के पास, बैठ कर वर्तन मांजते हुए।'

'ओफ: गजब कर दिया तुमने भी। कितनी बार आफिस के चप-रासी के वर्तन मांजने को मना करने पर तुमसे कहा—किसी वर्तन मांजने वाली को रख लो। पन्द्रह रुपये तक मिल जायेगी। ऑफिस सुपरिन्टेन्डेंट हूं। एक पोजीशन है मेरी। बड़े-बड़े लोगों का......।'

'आपने कौनसा मान लिया मेरा कहना। कहा था—'सिग्रेट पीना बंद नहीं कर सकते तो कम ही कर दो। न माने। आखिर उस दिन वेझिझक घुसने वाले आपके मित्र मिस्टर कपूर ने आपको चोरी चोरी बीड़ी पीते देख ही लिया था।'

'तब से बीडी पीना भी तो छोड़ दिया।'

'सिग्रेट तो नहीं छोड़ी। आखिर खर्चा वढ़ा ही।'

'मेडम, स्टेन्डर्ड मेनटेन करने के लिये सब कुछ करना पड़ता है।......क्या हमारी पोजीशन सौ रुपये के किराए के मकान में रहने की है ? स्कूटर रखने की है ? पर जमाने को देखते हुए सब कुछ करना पड़ता है। इसलिये कहता हूं कि कल से वर्तन मांजने वाली रख लो और हमेशा यह ध्यान रक्खो कि घर के प्राणियों व चीजों में को भद्दापन तो कहीं नहीं झलक रहा। समझीं ?'

तब से हम सब ऐसे तैयार रहते हैं जैसे अभी अभी कहीं जाते है। इस कारण खर्चा वढ़ गया। आर्थिक स्थिति बिगड़ गई। पत्नी

लिये घर में ज्यादा काम न होने के कारण उसका भी धीरे धीरे घर
में मन लगना कम होता गया और बाहर घूमने को मन बढ़ता गया।
बच्चे भी शान शौकत मे ऐसे डूबते गये कि उनका घर में तनिक भी
मन नहीं लगता। हमेशा नये नये फैशन की बात करते हैं। उनके मन की
नहीं करता तो अपना स्टेन्डर्ड डाउन दीखता है। करूँ तो एक दिन
अपने को बिकने की कल्पना को सत्य प्रतीत करता हूं।

सोचता हूं कि मुझसे तो अच्छा सामने का मजदूर ही है।
खुद कमाता है। बीबी बच्चे कमाते हैं। कुल मिला कर मुझसे ज्यादा आम-
दनी होगी ही उसकी। फिर भी टूटे-फूटे मकान, फटे-पुराने कपड़ों,
रूखी-सूखी रोटी में ही सन्तुष्ट लगता है। स्टेन्डर्ड का जैसे वह अर्थ
समझने की चेष्टा ही नहीं करता। ना आने वाले का दुख है उसे ना जाने
वाले की खुशी।

क्या करूँ? दस रुपये का नोट इस सर्दी में भी मुट्ठी के अन्दर
दबा हुआ भीग गया है। समझ नहीं पड़ता पत्नी के गाउन की सिलाई दूँ,
या राजेश की पार्टी का इन्तजाम करूँ। बीना के केस के लिये वकील की
फीस दूँ। या स्कूटर मे पैट्रोल डलवाऊँ? मिस्टर खन्ना के लड़के के बर्थ
डे के लिये परजेन्ट लाऊँ या इच्छाओं की मीलों लम्बी कतार को
पूरा करूँ?

पत्नी न जाने कब से मेरे पास आकर झकझोर कर कह रही है-
'जाओ न जल्दी से ले आओ परजेन्ट। जल्दी......।'

पर मैं गर्दन झुकाए खामोशी जूते की टोह को देखे जा रहा हूं।
देखे जा रहा हूं।

—◻—

किरणों का आठवां रंग

उस दिन कुछ विशेष ठंड थी। नींद खुल जाने पर भी मेरा मन पलंग पर से उठने को नहीं कर रहा था। आखिर कब तक लेटा रहता। न जाने कब से सूर्य की किरणें खिड़की की दरारों से होकर धीरे धीरे मेरी ओर बढ़ रही थीं, जैसे मुझे उठाने के लिए कटिबद्ध हो गयी हों। भला मैंने कब किसी का एहसान लिया था? तुरन्त एक हाथ से रजाई को दूर फेंका और उठ खड़ा हुआ। खिड़की खोली। अवाक् रह गया, जब देखा कि एक ग्रामीण युवती बाहर चबूतरे पर खड़ी है। मैं अभी उस यौवनांगी को देख ही रहा था कि वह मेरी ओर घूमी। मेरी आंखें उस पर अटक गयीं। समझ में न आया कि वह कौन है? कहां से आयी है? क्या चाहती है। और प्रातः ही इतनी उदास क्यों? कुछ पूछने का साहस किया ही था कि वह सामने से आने वाली बस की ओर लपकी। मन शंका से कांप उठा कि कहीं वह अपनी उदासी का सदा–सदा के लिए अन्त करने को तो नहीं भागी है। पर उस समय मैंने सन्तोष की गहरी सांस ली, जब वह मेरे मकान से थोड़ी-सी दूर स्थित बस स्टेन्ड पर, बस रुक जाने पर, कुछ कुलियों के साथ सामान उठाने की मुद्रा में चुपचाप खड़ी हो गयी।

देखते-देखते उसे ग्राहक मिल गया। उसने अपने गले से दुपट्टा खींचा और उसकी पिंडी बनाकर सिर पर रखी। फिर उसने अपने ग्राहक

'आप समझते तो हो नहीं। हां……'

'क्यों नहीं समझता !' मैं अनजान सा बन जाता।

'कोई आ गया तो ?'

'दरवाजा बन्द कर दिया कर।'

'हां कर दिया कर।' कमली बनावटी नाराजी से कहती—

'आपका क्या बिगड़ेगा……!' यह सुनते ही मेरे स्वाभिमान को ठेस लगती। मैं चुप हो जाता। कभी कोई किताब लेकर बैठ जाता तो कभी कुछ लिखने लगता। वह भी खामोशी से कार्य में लगी रहती। पर मुझे उसकी अधिक समय तक उदासी भरी खामोशी बेचैन कर देती। बोले बगैर न रह पाता। कभी कहता—'पानी लाओ। और कभी कहता चाय तैयार कर दो। और कभी-कभी मैं अपने बेसुरे स्वर में कोई गीत गाने लगता। थोड़ी देर में परास्त होकर उससे पुनः चुहलबाजी करने लगता।

एक दिन उसने अखंड मौन धारण कर लिया। मैं उसकी निरन्तर खामोशी से झुंझला उठा अन्त में पानी मांगा। वह गिलास लेकर मेरे समीप आयी। अनजान-सा बना मैं पढ़ता रहा। वह खामोशी से बार-बार गिलास मेरे पास लाती। मैंने जानबूझ कर अपने को अध्ययन में तल्लीन बनाये रखा। आखिर वह मीठी झिड़की देते हुए बोली—'पानी नहीं पीना था तो मंगाया क्यों ?'

'इसलिए कि तेरी जुबान खुले।'

'क्या मैं गूंगी हूं ?'

'मैं तो यही सोच रहा था।' कहते कहते मैं हंस पड़ा।

'गूंगी होगी आपकी सास !……हां !' कहते कहते कमली दबी आवाज में हंस पड़ी और झटके से पास में रखी मेज पर गिलास रख कर फुर्ती से लौटने लगी।

'मेरी मां तो मर गई।' मैं दर्द भरे स्वर में बोला। यह सुनते ही कमली जहां की तहां ठिठक कर रह गई। धीरे से गर्दन घुमा कर गम्भीरता से बोली—'मांजी तो कह रही थी कि आपकी अभी शादी ही नहीं हुई है।'

मैं एकटक उसे निहारता रहा। उसके भोले चेहरे पर विचारता रहा। वह मेरी ओर अपलक निहारती रही। एक पवित्र आमन्त्रण था। वह खड़ी रही।

पल गुजरे। ठंड बढ़ गई थी। मैंने कमली से कहा कि वह मेरे ही कमरे में, सर्दी तक, स्टोव पर भोजन तैयार कर लिया करे। वह मेरी नीयत जान गयी। मुसकराकर चली गयी। अब उसका अधिकतर समय मेरी आंखों के सामने ही कटता था। मुझे एक तृप्ति सी प्रतीत होती थी, जैसे मेरे चारों ओर का वातावरण ताजगी से भर गया है।

कभी कभी मैं उसे एकटक निहारता रहता।

मेरे कुछ देर तक उसे निहारने पर वह कभी-कभी पूछ बैठती—क्या देख रहे हो?'

मैं सिर्फ उसे खामोशी से देखता रहता। वह मेरी निगाह की गूढ़ भाषा समझ जाती। उसका चेहरा सुर्ख हो उठता और वह गर्दन झुका कर विचारों में डूब जाती। ऐसे अवसरों पर कभी सब्जी जलने लगती तो कभी रोटी। जब दोनों सचेत होते तो वह नाराजगी का अभिनय करती हुई कहती-'फालतू बातों में उलझा देते हो। देखो अपना कितना नुकसान हो गया है।' मैं महसूस करता कि अब वह मेरे निकट आती जा रही है। पारख्य की जगह अपना आ गया है।

' अपनी-अपनी अकड़ को बनाये हुए हम नजदीक और नजदीक आ गये थे। पर मेरे भीतर कोई एक कायर छुपा था, जो सम्बन्धों को स्पष्ट करने का साहस नहीं कर रहा था।

उस दिन ठंड में कुछ तेजी थी। कमली चाय का प्याला लेकर आयी। मैंने उसके चेहरे की ओर देखा। फिर कुछ विचारकर बोला–

'एक प्याला और लाओ।'

'क्यों?' वह मुसकराई।

'ला तो सही।'

वह लपककर रसोईघर में गयी और कुछ पलों के भीतर उसने एक प्याला लाकर मेरे हाथ में थमा दिया। आधा कप चाय दूसरे कप में डालकर मैं बोला–'अब आज इतनी ही मिलेगी तुझे चाय।……अब जब कभी भी चाय बनाये तो अपने को मत भूलना।……समझी? मुझे अकेले चाय पीने में मजा नहीं आता है।'

उसने चाय अधिक पीने के नुकसान पर भाषण दिया। पर मैंने एक न सुनी तो वह मुसकरा दी–'बड़े जिद्दी हो।'

वह कुछ देर तक खड़ी रही। फिर धीरे से प्याला मेरे हाथ से लेकर कमरे से बाहर चाय पीने लगी। मैंने पूछा–'अरे यह क्या बेहूदगी है?' उत्तर में उसका बाहर से हंसी-भरा स्वर सुनाई देता रहा। जब वह लौटकर कमरे में आयी तो मैं मुसकराते हुए बोला–'अब तुझे शर्म भी आने लगी है।' वह पीठ फेरकर, दोनों हाथों से मुंह ढके फिर हंसने लगी। उसके शरीर के मधुर कम्पन को देख कर मेरे दिल में भी मीठा-मीठा कम्पन होने लगा। मेरी इच्छा उसे पीछे से पकड़ कर अपनी बांहों में समेटने की हुई, पर एरिस्टोक्रेटिक मन—! मुझे लगा कि मुझ में उबाल है। मैंने अपने मन को तत्क्षण काबू में किया।

अब कमली जब कभी भी चाय बनाती तो अपने लिए अवश्य एक कप रख लेती थी। मेरे सामने बैठ कर चाय पीती थी। मुझे अब उसके सामने बैठने में और ज्यादा सन्तोष मिलने लगा। उस समय तो मेरी खुशी की कोई सीमा न रहती, जब वह कभी मजाक में मेरी आंख बचते ही मेरी

चाय में नमक मिला देगी। इधर मैं भी उसे इधर-उधर की बातों या काम में कुछ देर के लिए उलझाकर उसकी चाय में पानी डाल देता। फिर भेद खुल जाने पर हमारी हंसी का दौर शुरू हो जाता। हम भूल जाते कि कार कोई बैठा है।

इसी तरह भोजन का सिलसिला शुरू हुआ और एक दिन हम दोनों साथ-साथ फर्श पर बैठकर चाय पीने लगे और भोजन करने लगे। सहवास और स्पर्श सुखी लगता। एहसासों से घिरा मैं ताजगी के समन्दर में डाल दिया गया महसूस करता—मैं सुखों से घिर गया हूं। ···· और एक दिन मैंने उसे बांहों में भरा। उसकी दृष्टि से एक प्रश्न लपककर मेरे मुंह पर चिपक गया। मानो वह पूछ रही है—

'बाबूजी यह प्रेम है या खेल-तमाशे? कहां आप और कहां मैं? क्या आप मुझसे शादी करेंगे? मुझे जीवन भर इतना प्यार देंगे?'

सच मैं उदास हो गया। मेरे अन्दर कुछ भुर-भुरकर गिरा। टूट गया। मेरा चेहरा गम्भीरता से पुत गया। उसे हड़पने की जो नौबत मेरी सबल हो रही थी, वह एकाएक मरणासन्न हो गयी।

उसने मेरे असह्य गहरे मौन को तोड़ा—'आपको क्या हो गया है? आप तो एकदम चुप हो गये। मुझे आपकी यह उदासी भरी शकल अच्छी नहीं लगती।'

मैंने उससे गम्भीर स्वर में कहा—'मुझसे न मिलती तो अच्छा था कमली।'

वह जैसे मेरा तात्पर्य समझ गई। वह भी गम्भीर हो गई। सन्नाटा हमारे बीच पसर गया।

एकाएक उसके घाघरे व दुपट्टे पर नजर फेंककर मैंने कहा—'कमली तू अपने कपड़ों का नाप तो देना मुझे।'

'क्यों जी?'

'तेरे लिए कुछ कपड़े बनवाने हैं।'

'क्या मेरी बारात आने वाली है ?'

कहते कहते वह खुद शरमा गयी और उसने अपने घुटनों के बीच अपना मुंह छुपा लिया।

'बारात भी आयेगी।' कहते कहते मेरे पूरे शरीर में हलका कम्पन हुआ।

अगले दिन मैं शाम को उसके लिए मन पसन्द कपड़े खरीद लाया। पहले मैंने दर्जी की तरह उन कपड़ों को उसके शरीर पर रखकर देखा। वह आश्चर्य भरी आंखों से मुझे देखती रही। जब मैं मुसकराती आंखों से उसकी ओर देखकर बोला–'होशियार दर्जी से जल्दी बनवा लेना इन्हें। पैसे भले ही कितने ही लग जायें।' तो उसका स्वप्न टूटा। मुसकराकर बोली–

'इतनी जल्दी क्यों ?

'ताकि दिल में उजाला जल्दो हो सके।' कहकर मैं उसकी ओर लपका।

धत् ! कहकर वह कपड़ों के तीनों टुकड़ों को लेकर अन्दर वाले कमरे में भाग गयी। मैं भी जब उसके पीछे-पीछे भीतर भागा तो वह मीठी झिड़की देती हुई बोली–'आप बाहर जाओ।······हां······!' मैं आज्ञाकारी बालक की तरह बाहर आ गया।

कुछ देर तक जब वह न लौटी तो मैंने उस कमरे में लहरा रहे पर्दे को एक झटके से एक ओर खींच दिया। कमली बड़े शीशे के सामने खड़ी कपड़ों को सुन्दरता से लपेटे, बाल संवारती हुई, कोई पहाड़ी प्यार भरा लोकगीत गुनगुना रही थी, कमली के उस रूप व मीठे स्वर को सुनकर मैं मुग्ध हो गया। दूसरे ही पल उत्तेजित होकर उसके एकदम समीप पहुंच कर मैंने उसकी दोनों बाहें पकड़कर अपनी ओर उसका चेहरा घुमाने का प्रयत्न करते हुए कहा–'कमली देख। देख तो सही।' उसने झुकी-झुकी पलकें उठाई और दूसरे ही क्षण अपने को मुक्त करने का सफल प्रयत्न कर बाहर कमरे की ओर भाग गयी मैं भी बाहर की ओर लपका। उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचते हुए बोला–'कमली तू तो मिट्टी लगा मोती निकली।···

तू तो महल की रोशनी है, झोंपड़ी का अन्धेरा नहीं।"

यह कहते-कहते मैं उसे और करीब लाने का प्रयत्न करने लगा। पर जैसे ही उसके शरीर का मेरे शरीर से स्पर्श हुआ तो उसने अपने हाथों को तेजी से झटककर मेरे हाथों से मुक्त कर लिया और सकुचाती हुई बाहर आंगन में चली गई। कुछ देर तक तो वह आंगन में खड़ी रही। मैं अवश-सा उसकी प्रतीक्षा करता रहा। वह आयी। मेरे पास बैठ गई। मेरे भीतर का उबाल बढ़ गया। मैं उसके बालों को सहलाता रहा। न जाने कितने क्षण मर गये। जब उसने अपनी गर्दन उठाई, तब वह मुरझा चुकी थी। उसकी आंखें भरी-भरी थी। शायद वह अनागत अमंगल व पीड़ा से परिचित थी। वह उसके सीने में नासूर की तरह उभर आयी थी।

टूटते स्वर में बोली—"जा रही हूं।" मैं उसे नहीं रोक सका। मुझमें एक जड़ता छा गयी।

दूसरे दिन एक तार आया था। पिताजी ने मुझे किसी खास काम से बुलाया था। पिता के प्रति मुझमें बहुत ही आदर था। सो मैं कमली को आश्वासनों से बांधकर चल पड़ा। लखनऊ।

पर आया तो सबकी खुशी का ठिकाना न रहा। मां बोली—"बेटा आज हम तुझे फिर तार देने वाले थे। अच्छा हुआ तू आ गया।"

"क्यों? एक के बाद एक तार की क्या आवश्यकता आ गयी थी?" मैं गम्भीरता से बोला।

"नयी-नयी भाभीजी आने वाली हैं।" छोटी बहन बीच में ही बोल उठी।

"क्या?" मैं आश्चर्य भरे स्वर में चीख-सा उठा—"मुझे स्पष्ट क्यों न लिखा?" "ताकि तू अपने पसन्द की लड़की देखता-देखता बूढ़ा न हो जाये।" मां हंसते हुए बोली।

"छुट्टी कम लाया हो तो और ले लेना।" पिता बोले।

मैंने उन्हें कोई उत्तर नहीं दिया। दो–तीन दिन तक माता-पिता का उदासी से भरा चेहरा देखते हुए बाद में इसी निश्चय पर पहुंचा कि मुझे माता-पिता द्वारा तलाश की गयी लड़की से शादी कर लेनी चाहिए। आखिर वह पढ़ी–लिखी है। नौकरी भी करती है।···कमली से शादी ना तो सम्भव है, ना शोभनीय। शादी होने के बाद तो उससे और स्वतंत्रता व सुविधा से मिला जा सकेगा।··

अब मैं अपनी शादी के मामले में दिलचस्पी लेने लगा। ऑफिस में छुट्टी बढ़ाने की अर्जी भेज दी। मित्रों को शादी के कार्ड भेज दिये। एक कार्ड मकान मालकिन के नाम भी भेज दिया।

एक सप्ताह बाद मेरी शादी हो गयी थी। रीतिअनुसार मैं अपनी पत्नी को लेकर अपने रिश्तेदारों के पास कई शहरों व गांवों में गया। एक सामान्य जीवन हो गया था। तनाव कम हो गये थे।

करीब एक माह पश्चात मैं पत्नी को लेकर उस गांव के निकट पहुंचा जहां मैं नौकरी करता था। गाड़ी से उतरकर जैसे ही हम बस में बैठे तो पत्नी बोली—"अब और कितनी यात्रा बाकी है?"

"बस बारह किलोमीटर।"

कुछ देर बाद हरे-भरे खेत के मैदान दिखायी देने लगे। ८-१० कि॰ मी. की यात्रा पूरी होने पर अब पहाड़ों की श्रृंखला दिखायी देने लगी थी। देखते ही देखते हमारी बस ने पहाड़ों से घिरे उस गांव की सीमा में प्रवेश किया, जहां से एक माह पूर्व मैं किसी के प्यार भरे दिल को छोड़कर चला था। तभी मुझे पहाड़ियों से एक दर्द भरा गीत सुनायी दिया। मैंने पत्नी की ओर देखा। वह उस प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर पुलकित हो रही थी और मैं अब उदासी के सागर में डूबता जा रहा था। पत्नी ने एक-दो बार टोका भी···"गम्भीर कैसे हो गये?" "कुछ नहीं।···कोई खास बात नहीं।" रूखा-रूखा उत्तर था मेरा।

साँझ ढलने में अभी कुछ देर बाकी थी। बस रुकी। कुलियों के भुण्ड ने बस को आ घेरा। पत्नी का हाथ पकड़कर नीचे उतरा।

"बाबूजी!" एक जाना-पहचाना स्वर कानों से टकराया। ...कर मुड़ा। अवाक् रह गया। सामने कमली खड़ी थी। अपनी पुरानी ...रा कुर्ते वाली पोशाक में। मेरे एकटक उसे निहारने पर वह पत्नी की ...देखकर बोली-"मालकिन आप मुझे नहीं पहचानतीं। मैं आपकी नौक...ी हूं। चलिए, सामान कहा है। मैंने सब तैयारियां कर रखी हैं। ...जी की ईमानदार नौकरानी हूं।" वह नौकरानी शब्द को चबा-...कर कह रही थी। मैं नहीं जानता। पर मैं उसकी आकृति की असीम ...ा को जान रहा था।

मेरी पत्नी ने सारा सामान उसके सिर पर रक्खा।

हम लोग घर आये।

मालकिन बहुत खुश थी।

सारा मकान जगमगा रहा था। कमली ने जगह-जगह पर सुगन्धित लगाये थे। सेज पर फूल बिखराये थे। स्वादिष्ट भोजन बनाया था। उसकी तत्परता, उसका अपनत्व और उसके माधुर्यपूर्ण व्यवहार से मेरी ...ी मुग्ध हो गयी। बारम्बार कहने लगी-'मैं इसको नहीं जाने दूंगी। मेरे पास ही रहेगी।"

जाने से पहले कमली ने मेरी पत्नी से कहा-"मैं गरीब हूं माल...न। बाबूजी की नौकरानी हूं। "आपको कुछ देना चाहती हूं।"'आप ...र नहीं करेंगी। पहले वचन दीजिए।'"''दीजिए न बीबीजी'''!"

पत्नी ने वचन दिया। मैं बेचैन हो उठा कि कमली क्या कहना ...हती है? कुछ डर भी गया था कि कहीं वह मेरी पोल न खोल दे। ...वह भीतर वाले कमरे में गयी और एक थाली में मेरे द्वारा दिये गये

कपड़े– चमकदार लहंगा, कचुंकी, और ओढ़ना ले आयी। उसे पत्नी के
हाथ में देती हुई वह विचलित स्वर में बोली–"यह मेरा हृदय है बीबीजी।
...इसे आप पहन लेना।... यह पोशाक बाबूजी को बहुत पसन्द है–है न
बाबूजी ?" उसने मेरी ओर देखा।

मेरी आंखें सजल हो गयीं। पत्नी बोली–"जरूर पहनूंगी। यह
तो बहुत प्यारी ड्रेस है। वाह कमली, तूने मुझे मेरी मनपसंद की भेंट दी
है।"

"अच्छा मैं अब चलती हूं।"

"सुबह जल्दी आना कमली।" पत्नी ने कहा।

"आ जाऊंगी।...हां बीबीजी कल आप पहाड़ी के उस पार
सूरज को देखना। आपको सब बदला-बदला लगेगा। एक नया रंग।
धूप की किरणों का आठवां रंग–जो मन में रहता है।" और वह तीर की
तरह कमरे से निकल गयी।

मेरी पत्नी ने कहा–"कितनी अच्छी नौकरानी है। किसी गहरे
गम की सतायी-सी लगती है। इसे मैं नहीं छोड़ूंगी।"

मेरे हृदय में हजारों तरेड़ें पड़ गयीं।

—0—

घायल

प्रातः जागने से लेकर रात्रि को सोने तक उसका मन उदासी से भरा रहता है। उसे न उगता सूर्य ही अच्छा लगता है और न डूबता ही। बताने को उसे कोई दुःख नहीं है। चार बेटे हैं। चारों सन्तोषजनक धन्धे से लगे हुए हैं। अपने-अपने परिवारों के साथ परदेश में आराम से दिन बिता रहे हैं।

पैसों की उसे चिन्ता नहीं है। उसका एक छोटा सा मकान है। पेंशन के पैसे इतने मिल ही जाते हैं कि दो जीवों—वह और उसकी पत्नी की उदर पूर्ति आराम से हो ही जाती है। फिर क्या दुःख बताए वह? उदासी का क्या कारण बताए?……लेकिन फिर भी घुटन क्यों? मन में एक ऐंठन सी क्यों? वह सोचता है। सोचता रहता है।

कैसी अजीब पीड़ा है उसके मन में भी, जिसका उसे कोई हल नहीं मिल रहा। कोई किनारा नहीं मिल रहा। उस पीड़ा को भूलने के लिए वह दिन रात किसी न किसी कार्य में व्यस्त रहना चाहता है। काफी समय तक कार्य करने की वह किसी हद तक शक्ति व सामर्थ्य भी प्रतीत करता है। पर कार्य आरम्भ करने से पूर्व ही उसके मस्तिष्क में एक भयंकर प्रश्न चिन्ह बन जाता है—'लोग क्या कहेंगे?'

वह भीतर या तो माथे पर हाथ लगा कर बैठ जाता है या फिर

बाहर बरामदे में मस्ती से टहलने का अभिनय करता है, ताकि लोग समझें कि वह बड़ा भाग्यशाली है। वास्तव में चार बेटों का बाप है।

जब उसके बेटे एक-एक करके पढ़ लिख कर नौकरी पर लगते जा रहे थे, तो रिश्तेदार पड़ौसी व अन्य मिलने जुलने वाले कैसी मीठी चुटकी लेते थे–'हां भई अब घनश्याम जी के ठाठ तो हैं। एक के बाद एक लड़का नौकरी पर लगता जा रहा है। रिटायरमेन्ट तक चारों बेटे नौकरी पर लग जायेंगे। फिर दो हाथ दबायेंगे और दो पैर। मकान कोठी में पलट जायेगा और बुढ़ापा जवानी में।'

उसके चारों बेटे नौकरी पर तो लग गये, पर लोगों की ताने के रूप में कही अन्य सभी बातें सार्थक सिद्ध नहीं हुईं। उसके कहने के उपरान्त भी किसी बेटे ने उसके पास तबादला कराने का प्रयत्न नहीं किया है, उल्टे अपनी-अपनी सामर्थ्य से काफी कम पैसा भेज कर एहसान ही दिखलाया है। कई बार वह सोच चुका है कि वह किसी बेटे का पैसा स्वीकार न करे, पर मनीआर्डर आते ही वह फार्म पर हस्ताक्षर कर एक हल्की मुसकराहट के साथ पैसे गिनने लगता है। पर उसकी वह मुसकराहट अधिक समय तक कायम नहीं रहती है, तभी कभी-कभी वह बड़बड़ाने लगता है–'कैसी निकम्मी सन्तान पैदा हुई है। कम्बख्त एक भी पास आकर रहने को तैयार नहीं, जैसे मैं बाप नहीं दुश्मन हूं। दुश्मन। इससे तो अच्छा यह होता कि मैं बेऔलाद ही रहता।'

'क्यों अपशकुनी बातें मुंह से निकाल रहे हो?' पत्नी टोकती है 'कहीं किसी को कुछ हो गया तो?'

'तुम्हारे ही इस लाड प्यार ने उन्हें बिगाड़ दिया है।'

'हां। हां। मैंने ही उन्हें बिगाड़ा है। इस घर को बिगाड़ा है। घर के सारे शुभ कार्य तो कोई और ही आकर सम्पन्न कर गई होगी।' कहते कहते पत्नी रो पड़ती है।

पत्नी को रोती देखकर उसका मन और अधिक पीड़ा से भर जाता है और कुछ देर बाद वह अपने को अस्वस्थ-सा प्रतीत करने लगता

का साथ निभाने आता यह रिश्ता भी दूर होता जायेगा। क्या वास्त
ही रिश्ते नाते सब झूठे हैं? क्या मैं वास्तव में अकेला हूं? ए
अकेला?......' वह सोचता-सोचता बाहर की ओर धीरे-धीरे रवान
जाता है।

'ओफ: कैसी गलती की मैंने भी, बच्चों को पूरा आत्मनि
बनाकर पैसे भी न बनाये? धन के लालच में तो वे अवश्य, शह
छत्ते पर मंडराती मधुमक्खियों की तरह, यहां मंडराते रहते। जबकि,
स्वयं आने तक की तो सोचते ही नहीं।'

'उल्टे सीधे धन्धे करके पैसा कमाया। इन सबका घर बसा
किसलिये? क्या इसलिये कि आज मैं जीवन की संध्याकाल में दूध न
वाली बूढ़ी गाय की तरह सबकी आंखों का कांटा बनूं? यह भी
जिन्दगी है? इससे तो अच्छा यही है कि जहर खाकर मर जाऊं।....
उसका शरीर कांप उठता है। पैर लड़खड़ा जाते हैं। वह भीतर जा
चारपाई पर लेट जाता है और ठंड से सताए कुत्ते की तरह रोने लगता
पत्नी उसके समीप आकर बैठ जाती है। सांत्वना भरे स्वर में कहती
'तुम्हें ऐसा क्या दुःख है? क्यों इतने परेशान से रहते हो? भगवान
चाहा तो बच्चे भी एक न एक दिन हमारे समीप आ ही जायेंगे।'
कम्बख्त कभी हमारे पास नहीं आयेंगे? मैं उन्हें जानता हूं। आखिर
उनका बाप हूँ।' भीगे व क्रुद्ध स्वर में वह कहता है।

'गालियां तो न दो उन्हें! आखिर वे हमारी ही तो संतान है
'भाड़ में जाए ऐसी सन्तानें।'

यह सुनते ही पत्नी गरज पड़ती है। कुछ देर तक तो वह, उ
मुकाबला करता है। फिर खामोश हो जाता है। और सोचने लगता
'कि उसे कोई रोग है। तभी पत्नी भी उस पर हावी है।' वह चारपाई
उठता है और हॉस्पिटल की ओर रवाना हो जाता है। पत्नी उसे पुकार
रह जाती है।

रास्ते में वह सोचता है–'शक नहीं कि मुझे हृदय रोग है। मैं तुरन्त हॉस्पिटल में भर्ती हो जाऊंगा। वहीं से अपनी पत्नी व बच्चों को अपने भयंकर रोग की सूचना दे दूंगा। फिर देखता हूं कि कैसे ये लोग मेरे लिये चिन्तित नहीं होते हैं। मेरी सेवा नहीं करते हैं।"

हॉस्पिटल।

"डाक्टर साहब। डाक्टर साहब। मुझे जल्दी से देखिये। मुझे जल्दी से देखिये। मुझे पूरा विश्वास है कि मैं हृदय रोग से पीड़ित हूं।" वह डाक्टर के समीप पहुंच कर निवेदन करता है। डाक्टर इत्मिनान से उसे देखता है और मुस्करा कर कहता है–'डरो मत आपको कोई रोग नहीं है। अभी आपको बहुत जीना है।"

वह वहां से उठ कर बाहर की ओर चल पड़ता है। कुछ क्षणों बाद चिन्ता में डूब जाता है–"क्या सचमुच मुझे बहुत जीना है?.........क्या मैं अब भी अपने बच्चों को अपनी तबियत खराब होने तक की बात नहीं लिख सकता?......... नहीं। नहीं। मुझे रोग है। मृत्यु तक ले जाने वाला रोग।... .....कोई मृत्यु की देहरी पर खड़ा है और ये कहते हैं कि उसे कोई रोग नहीं।.........वाह रे भगवान धन्य है तुझे भी! कैसे नमूने घड़ घड़कर भेजे हैं तूने भी इस पृथ्वी पर। तू तो जानता ही है कि मेरी अन्तिम घड़ी आ गई है। मुझे कोई नहीं बचा सकता। कोई नहीं।" ....एक भयंकर तूफान उठ खड़ा होता है उसके मस्तिष्क में। और वह एक कार से टकरा जाता है। कार तेजी से आगे को दौड़ जाती है। बेहोश न होते हुए भी वह बेहोशी का अभिनय करता है। धीरे-धीरे भीड़ उसके चारों ओर इकट्ठी होने लगती है। वह आंख बन्द किये कुछ लोगों के सहानुभूतिपूर्ण वाक्यों को सुनता है–"बहुत बुरा हुआ।.........इस बुढ़ापे में।......... यह दुःख। हाय राम।...... .. कार को रोक कर कार वाले की पिटाई करनी चाहिये थी।.....बेचारे के पता नहीं कोई है भी या नहीं।"......

तभी वह सोचता है—"जब पराए इस हालत में मुझसे इतनी सहानुभूति रख रहे हैं तो अपने क्यों न रखेंगे ? ....अब बच्चे मेरे पास अवश्य आयेंगे । मेरे प्रति सहानुभूति प्रकट करेंगे । पत्नी भी मेरी कीमत आंकेगी। दुनिया भी मेरी कीमत आंकेगी । तब मैं शान से सीना तान कर कह सकूंगा, कि वास्तव में मैं भाग्यशाली हूं । चार बेटों का बाप हूं । मेरे चारों बेटे वास्तव में मेरे हैं । मेरे सशक्त हाथ पैर हैं । कोई मुझे अब बेहूदा शब्द नहीं बोल सकता । मैं शहनशाह हूं ।.........मैं.........।"

उसके मुंह से अचानक "मैं" निकल जाता है। तभी भीड़ से एक स्वर आता है—"आ गया होश । बूढ़े को होश आ गया ।"

वह मन ही मन स्वयं पर झुंझलाता हुआ उठ बैठता है और एक झटके से उठ खड़ा होता है ।

वह अभी कोरी सहानुभूति दिखलाने वाली भीड़ की ओर देखे बिना पलकें नीची किए, रवाना होने को ही था कि तभी पास खड़े व्यक्ति का तीर-सा चुभता स्वर—'जा रे बूढ़े जरा-सा खून आया है, हॉस्पिटल जाकर पट्टी बंधवा आ ।" उसके दिल पर आ लगता है ।

वह बिना किसी से कुछ कहे, गर्दन झुकाए, घर की ओर चल पड़ता है ।

रिश्वत

□

कल तीन महीने पूरे हो जायेंगे। उसकी नौकरी के तीन महीने। के बाद कौन जाने उसे नौकरी पर रखा जाएगा भी कि नहीं। लोग ते हैं नियमों के अनुसार पहले उनको तीन महीने की नियुक्ति के आर्डर ते हैं। और फिर नौकरी के महीनों की मियाद बढ़ते बढ़ते एक दिन उसे ई नौकरी के आर्डर भी मिलने चाहिये, जिसकी ना उसे उम्मीद है। ना र लोगों को।

घर का कार्य पूरा कर और पिता को दवाई देकर, वह अपने रे में चारपाई पर लेट गई है। उसका मन लेटने को नहीं कर रहा है, र भी वह कमर दुखने के कारण लेट गई है। आखिर दिन भर आफिस जी तोड़ मेहनत करने के बाद, वह सुबह शाम घर के तमाम कार्यों को टाती है। दवाई लाने तक का उसे सहारा नहीं है।

उसने मेज पर पड़ी कोर्स की पुस्तकों के कुछ पन्ने उलट डाले हैं, उसका कहीं भी जी नहीं जम रहा। जमें भी कैसे? रह रह कर उसे बात कचोट रही है कि यदि कल सचमुच उसे नौकरी चालू रखने कभी आर्डर नहीं दिया गया तो वह क्या करेगी? कैसे घर का खर्च पायेगी? कैसे पिता का इलाज करा सकेगी? कैसे क्वालिफिकेशन पायेगी?………

एकाएक वह कांप उठी। नियुक्ति के बाद की एक के बाद ए
घटनायें उसकी आंखों के सामने घूमने लगीं। नियुक्ति होने के दि
जब वह समय पर ऑफिस से रवाना होने को ही थी कि तभी एक चपरा
ने नम्रता से उससे कहा था—'आपको साहब ने याद किया है।'

'साहब ने ?' उसके मुंह से घबराहट भरा स्वर निकला था।
तभी उसकी आंखों के सामने काला, भारी बदन का, पर रोबीले चेह
वाला सादे कपड़े पहने, एक अधेड़ व्यक्ति घूम गया था और घूम गई थी
दो दिन पूर्व इन्टरव्यू के समय उस पर टिकी, उसकी पैनी आंखें।

चपरासी के दुबारा निवेदन करने पर उसे चेतना आई थी। मुं
पर हाथ फेर कर, कपड़ों को ठीक करती हुई, वह साहब के कमरे की ओ
बढ़ गई थी।

यह कमरा ऑफिस की भीमकाए बिल्डिंग के एक कोने में स्थि
है, जिसके आगे एक हाल है, जहां सिर्फ कभी कभी आफिसरों की बैठकें व
पार्टियां होती हैं। हाल के आगे कई छोटे व बड़े कमरे हैं, जहां ऑफिस क
सबार्डिनेट व मिनिस्ट्रीयल केडर का स्टाफ बैठता है। हाल के सामने
तक सब कमरों को कवर करती एक गैलेरी में चली जाती है, जहां स्टू
लगाए सिर्फ चपरासी बैठते हैं।

साहब के कमरे के बाहर बैठने वाले चपरासी को विशेष हिदायत
है कि कोई भी व्यक्ति बिना चिट दिये भीतर नहीं आए।

साहब के कमरे के पास रुक कर, चिकडोर खोलकर और सा
लम्बे चौड़े पर्दे को एक ओर झटका देकर, वह बोली—'मैं आई कम इ
सर ?' 'यस......।' एक लम्बी चौडी खूबसूरत मेज के पास, चारों ओर
घूमने वाली एक खुबसूरत कुर्सी पर बैठे सामने फैली हुई फाईल का पन्ना
उलटते हुए, उस पर एक उड़ती हुई दृष्टि डालकर, साहब बोले थे।

वह आगे बढ़ गई थी। पर साहब फाइल में खोए हुए लग रहे

ो। पांच सात सैकिन्ड तक वह मेज के पास खड़ी भी रही, फिर भी साहब की ग्रांखें फाइल पर ही चिपकी लग रही थीं। ग्राखिर वह बोल उठी थी—'सर क्या ग्रापने याद किया मुझे ?'

साहब की दृष्टि उठी। मुसकराकर बोले—'ग्रोह कमल तुम··· बैठो।' यह सुनते ही कमल को लगा था कि उसका ग्रफसर वास्तव में अफसर है। एक उसके पिता का भी ग्रफसर था, जिसमें मानवता तो दूर रही ग्रौपचारिकता नाम की भी चीज न थी।

करीब एक सप्ताह पूर्व पिता की लम्बी भयानक बीमारी के दौरान वह उनका हाथ थामे, उनके कार्यालय में गई थी। पिता के साथ साथ वह भी जानना चाहती थी कि ग्राखिर उनको दो वर्ष पूर्व रिटायरमेंट कैसे दे दिया गया ? पर ग्रॉफिस पहुंचकर पिता तो कंकाल से शरीर को घसीटते से अपने साहब के कमरे में चले गए थे ग्रौर वह सकुचाहट व घबराहट की अग्नि में झुलसती दरवाजे पर चिक के पीछे खड़ी रही थी। उसके ग्राश्चर्य का ठिकाना न रहा था, जबकि उस ग्रफसर ने उसके पिता की दयनीय हालत को देखकर भी बैठने को न कहा था। उस समय तो उसके हृदय में क्रोधाग्नि भड़क उठी थी, जब पिता के रिटायरमेंट का कारण पूछने पर वह अफसर रूखेपन से बोला था—'डाक्टर की रिपोर्ट के अनुसार तुम मेडिकली अनफिट हो, इसलिए तुम्हें कम्पलसरी रिटायरमेंट दे दिया गया है। जाग्रो। काज करो।'

वह फुर्ती से उस ग्रफसर के कमरे में घुसी तो थी, पर खामोशी से पिता का हाथ थामे बाहर ग्रा भी गई थी।

न जाने कब तक वह पिता के उस ग्रनादर व ग्रार्थिक संकट की लपटों में झुलसती रहती, यदि तीन दिन पूर्व उसके साहब, पिता को उसकी नौकरी, ग्रपने कार्यालय में लगाने का ग्राश्वासन न दे जाते। इन्सान है तभी तो इन्होंने बचपन में, घर पर पढ़ाने वाले गुरू के दुःख को ग्रपना दुःख समझकर फर्ज निभाया।·········

पिता की हालत और बिगड़ गई तो ? साहब ने छोटी छोटी बातों
एक्सप्लेनेशनकाल करते करते चार्ज-शीट देकर सस्पेन्ड कर दिया तो फि
उन्हें, उसका असंतोषजनक कार्य घोषित कर, समय से पूर्व ही उसकी नौक
से अलग करने में देर न लगेगी।.........पर वह क्यों इन चन्द चांदी के
टुकड़ों के पीछे अपना धर्म, अपना ईमान बेच देने वालों की तरह बने!
आखिर उसकी कोई इच्छायें हैं। उसका कोई अस्तित्व है। उसके जीने
अपना ढंग है। आदर्श भरा ढंग। भला ये क्या बात हुई कि ईमानदारी से
भी एक इन्सान को नहीं जीने दिया जाता इस जमाने में ?......कैसे जी
दिया जाए उसे ईमानदारी से ? देश उसका भले ही स्वतन्त्र है, पर लो
के मस्तिष्क से गुलामी की बू तो नहीं गई है अभी तक। पहले विदेशी गि
ईमानदारी से, इज्जत से, रहने वाले, भोले प्राणियों को नोंचते थे और अ
देशी गिद्ध।......'

पर इस तरह के अनेक तूफानों ने भी उसे विचलित नहीं किया।
भले ही पिता की बीमारी में उसके घर का एक एक कीमती सामान बि
गया। ऑफिस में झूठे आरोप लगाकर, चेतावनी पर चेतावनी मिलने रहने
पर, उसे अपनी नौकरी छूटने का विश्वास हो चला।

आखिर जैसे तैसे कल उसकी के तीन महीने पूरे हो ही जायेंगे
पर कल होगा क्या ? 'रह रह कर उसके मस्तिष्क में यही प्रश्न उभर उभर
कर आ रहा है, जिससे उसके मस्तिष्क में तनाव व मन पर बोझ बढ़ता जा
रहा है।

एकाएक किसी ने दरवाजा थपथपाया। वह चौंक उठी। दरवाजे
के समीप पहुंच कर वह घबराए स्वर में बोली—'कौन ?'

'मैं।......राजेश।' बाहर से स्वर आया। उसे कुछ जाना पहचाना स्वर
लगा। फिर भी उसने तनिक घबराहट के साथ दरवाजा खोल दिया।
सामने ऑफिस का एक बाबू खड़ा था—राजेश। वही राजेश जिसे एक दि

ने डांटा था—"शर्म नहीं आती तुम्हें किसी सीधे रास्ते चलते इन्सान तंग करते हुए ?"

"तंग ? किसने किया मैंने तंग ?" राजेश आश्चर्य से बोला था।

"इतने भोले मत बनो। खूब समझती हूं मैं आजकल के डों को।"

"आखिर बोलो तो सही मैंने.........?"

"मैं पूछती हूं कि तुम्हें क्या अधिकार था मेरे पैड पर लगे इस कागज पर हजार बार नाम लिखने का ? कहूं साहब से कायत ?"

"शौक से करिये। लेकिन सिस्टर पहले मेरी लिखावट से इसे मान करके देख लीजिये।"

वास्तव में जब उसने उसकी लिखावट से उस कागज पर लिखे दों को मिलान किया तो भिन्नता पाई थी। तभी उसने उससे अपने द वापिस लेते हुए क्षमा मांगी थी।

"कहो राजेश कैसे आना हुआ !" वह आश्चर्य भरे स्वर में ली।

"आपको एक खबर सुनाते हुए दुःख हो रहा है सिस्टर।"

"कैसी खबर।......आओ भीतर बैठो।" कह कर कमल भीतर चली और राजेश उसके पीछे पीछे।

अपने कमरे में आकर कमल एक कुर्सी की ओर इशारा कर जेश की ओर देखती हुई बोली-"बैठो।" राजेश के बैठते ही वह श्चर्य भरे स्वर में बोली-"अब सुनाओ वह खबर ?"

"आखिर सुनोगी ही ?"

"सुनाने आये हो तो जरूर सुनूंगी।"

"ऐसी बात नहीं है पिताजी। आज का युवक कोरे आदर्श पर जीना पसन्द नहीं करता। वह जीवन के सत्य को समझने का प्रयत्न करता हुआ उसके अनुसार अपने जीवन को ढालने का प्रयत्न करता है। मैं भी आज तक कोरे आदर्श पर चल कर अपने जीवन को धन्य समझती थी, पर आज समझी कि कोरे आदर्श पर चलकर हम प्रगति नहीं कर सकते। कूप-मण्डूक की तरह एक ही सीमित दायरे में चक्कर काटते रहेंगे।"

"ओह! क्या हो गया आज के नौजवानों तुम्हें। क्यों खुद को, देश को, गर्त में ले जाने पर तुले हो।"

आप चिन्ता न करें। मैं कल प्रातः ही साहब से मिलने उनकी कोठी पर जाऊँगी और कहूंगी कि यदि वास्तव में ही उनकी रिश्वत से प्यास बुझती है तो मैं जीवन भर वेतन का एक हिस्सा, जो वे निश्चित कर दें, देती रहूंगी।"

"कमल आज तुम कैसी पागलपन की बातें करने लग गई? तुम साहब के पास अकेली नहीं मेरे साथ चलना। आखिर मैंने उन्हें पढ़ाया भी है। कुछ तो कीमत आँकेंगे ही वे मेरे शब्दों की।"

"आप भी चलना। ताकि आप भी जान जाएं यह देश अब ऋषि-मुनियों का देश नहीं रहा, जहां शिष्य, गुरू को भगवान से बढ़ कर मानते थे। अब यदि गुरू शिष्य के एक थप्पड़ मारता है तो शिष्य गुरू के दो थप्पड़ मारने का साहस रखता है।"

"तो क्या इसे ही तुम जीवन की सच्चाई मानती हो? आज का युवक मानता है। छिः। जिस घर में, जिस समाज में और जिस देश में बड़ों का आदर नहीं, वह घर, वह समाज, वह देश कभी तरक्की नहीं कर सकता कमल। कभी नहीं।" पिता पूरी शक्ति से बोले-"यही कारण है कि आज संसार में युवकों में, जितनी उच्छृंखलता, अनु-

सनहीनता देखने को मिलती है, ऐसी कभी देखने को नहीं मिली।"

"पर यह उच्छृंखलता क्यों ? अनुशासनहीनता क्यों ? इतनी राशा क्यों ? इतना अविश्वास क्यों ?" कमल चीख सी उठी।

"यह सिर्फ युवकों के दिमाग का फितूर है। फितूर। आज युवक वह चाहता है, जिसके लिए वह प्रयत्न नहीं करता।"

"मैं यह बात नहीं मानती पिताजी। क्या आज के युवक को ई चीज मिल जाती है जिसके लिए वह प्रयत्न करता है ?"

पिता ने कमल की ओर देखा, पर दो-तीन पल पश्चात पलकें कालीं। कमल ने पिता के चेहरे की गम्भीरता बढ़ती देखकर उन्हें ने के लिये आग्रह किया। और स्वय दूसरे कमरे की ओर बढ़ गयी।

न जाने कब वह साहब के अत्याचार व पिता की बीमारी के विषय सोचती हुई सो गई।

प्रातः पिता के आवाज देने पर कमल उठी और फुर्ती से पिता के ाथ तैयार हो गई।

साहब की कोठी पर पहुंच कर जैसे ही कमल ने काल बैल पर ंगुली रखी तो उसका हृदय तेजी से धड़कने लगा। उनके, उसके प्रति केए अत्याचारों की तस्वीरें उसकी आंखों के सामने घूमने लगीं।

नौकर आया और परिचय लेकर बाहर बरामदे में पड़ी कुर्सियों र बैठने को कह गया। दो चार मिनट पश्चात् फिर वही नौकर आया, ोला-'साहब ने ऊपर बुलाया है।'

र मैं तो ऊपर नहीं चढ़ सकता कमल।' पिता बोले।

'तो मुझे ही बात करनी पड़ेगी उनसे।' कहकर कमल, दिल की धड़कनों को समझाती हुई, आगे बढ़ गई। तभी नौकर भी फुर्ती से उसके साथ हो लिया। पर पीछे से पिता का स्वर-'कह तो यहीं। सुन तो सही।'

एक कदम आगे

खाली खाली सा मकान । कहने को दो प्राणी-वो और मैं, यानि दीपा और मैं । शादी के बाद बहुत कठिनाई से तीन दिन घर पर बिता कर, करीब दो सप्ताह इधर-उधर की सैर कर, एक सप्ताह पूर्व, हम दोनों परदेश में आ गये थे । यहां भी सप्ताह भर में शायद ही कोई रमणीय स्थान छुटा हो, जहां हमने सैर न की हो, आनन्द न लूटा हो । तभी आज मेरे ऑफिस जाते समय दीपा रास्ता रोकते हुये उदासी भरे स्वर में बोली- 'क्या अभी से ऑफिस चल दिये ?'

'क्या कहती हो डार्लिंग । घड़ी की तरफ देखो । ग्यारह बजने वाले हैं । बैंक की अफसरी है…… ।

दीपा रास्ते से हट गई । मैं स्कूटर पर जा बैठा ।

जल्दी आना । दीपा का उदासी भरा स्वर आया

'चिन्ता न करो । खाना बंशी के हाथ भेज देना ।'

'आओगे नहीं दोपहरको ?'

'काफी दिनों बाद ऑफिस जा रहा हूं । काम ज्यादा होगा। …अच्छा टा-टा ।' हाथ हिलाता हुआ मैं रवाना हो गया ।

दिन ढले ऑफिस से लौटा । ड्राइंग रूम में प्रवेश करते ही दीपा

े से चिपकती हुई शिकायत भरे स्वर में बोली—'बहुत देर लगादी आपने। ाहर में भी न आये ?'

'काम बहुत था।' दीपा को बाहों में भर कर बेडरूम की तरफ आते हुये मैं बोला—'देखो चिन्ता न किया करो।'

'रोज इतनी देर न करना।' मेरे सीने पर सिर गढ़ाकर दीपा बोली।

'फिर वही चिन्ता। चलो वोरियत दूर कर लें।'

अभी हम कुछ देर से पलंग पर पड़े ही थे कि बंशी का स्वर ाया—'बीबीजी, चाय डाइनिंग रूम में रख दी है।'

झुंझलाकर हम उठे। चाय पीकर मैं बोला?'डियर चलो घूम एँ।'

'एक शर्त पर।' दीपा बोली।

'वह क्या ?'

'वहां फिजूल खर्च न करेंगे।'

'क्या मतलब ?'

'देखो यहां भोजन तैयार होने पर भी हम होटलों या रेस्तराओं फिजूल खर्च कर आते हैं।

'छोटी-छोटी बातें न किया करो।·······दो तीन दिन बाद बड़े— ड़े लोगों को शानदार पार्टी देनी है। इस सप्ताह के भीतर ही तुम्हें भी लब की सदस्या बनवा देना है। देखे जाओ मैं कैसे धीरे-धीरे तुम्हें इस ुनिया के आनंद सागर में डुबकियां लगवाता हूं।'

वास्तव में मैं, दीपा को इस संसार के आनन्द सागर में घसीटता ा ले गया, ताकि एक निश्चित स्थान पर पहुंचने के बाद वह स्वतः ही मेरी रह दिलचस्पी लेकर उस रास्ते पर आगे बढ़ती जाय। लेकिन उस रात की घटना मेरी कल्पना के विपरीत घटी।

दीपा को सुस्त देखकर मैं बोला था, 'क्या बात है डार्लिंग ? सुस्त क्यों हो ?'

'कुछ नहीं ।'

'अच्छा तो झूठ बोलना भी शुरू कर दिया है तुमने ?' कुछ देर चुप रहकर दीपा पलकें झुकाये आंसू बहाती हुई बोली—'आपके सामने घर का तो कोई महत्व ही नहीं है ····· ।'

'ऐसी गलत बात तुम कैसे कर रही हो ?' दीपा का चेहरा ऊपर कर मैं बोला – 'क्या बैंक मेनेजर जैसी जिम्मेदारी की पोस्ट मुझे यों ही मिल गई है ?'

'वहां भले ही आप अपने मन की सी न कर पाते हों, यहां तो हर कार्य अपने ही मन मुताबिक किया करते हो ।'

'तुम कहना क्या चाहती हो । साफ-साफ कहो न ।' मैं झुंझला कर बोला ।

'गरीब बाप की बेटी हूं । क्या कह सकती हूं ? वह अपना ही राग अलापती रही । उसकी आंखों में आंसू छलछलाते देख कर मैं उसे झकझोरते हुए बोला 'ऐसी उखड़ी–उखड़ी बातें क्यों कर रही हो ? मुझे तो तुम्हारे बगैर एक पल भी नहीं भाता ।'

'बस । बस प्रेम का प्याला इतना न भरो कि वह छलक जाय ।'

काफी जिद करने के बाद दीपा बोली–'आप, मुझे अपने इस आनन्द सागर से निकाल कर मेरे सुख सागर में ले चलो ।'

'सुखसागर की परिभाषा ?' मैं हंसता हुआ बोला । वह गम्भीरता से बोली–'यह वह स्थान है जहां इन्सान, इन्सान के लिए जीता है और मरता है ।' मैं दीपा की इस फिलासफी को बेहूदी मान कर बोला–'जैसी तुम्हारी मर्जी आवे वैसा करो । तुम्हारी खुशी के पीछे ही तो मेरी खुशी है ।······आओ चलें मन हल्का करलें ।' यह सुनते ही दीपा नेत्र मूंद

थे। उसके नेत्रों से ढुलककर आये कुछ अश्रुकण उसके रक्तिम कपोलों पर रुककर ऐसे दिखाई देने लगे, जैसे खिले कमल पर ओस की बूंदें आ टिकी हों।

कुछ दिनों तक घर का ढर्रा दीपा के आदर्श असूलों पर चलता रहा। लेकिन कुछ माह बाद मेरी सहन शक्ति जवाब दे गई तो मैं गरजा—'या आदर्श-आदर्श चिल्लाती हो। स्टेण्डर्ड डाउन करके रख दिया। जानती हो स्टैण्डर्ड मेनटेन करने में कितना समय लगता है?...... एक वह खूसट (पिता) न जाने कबसे 'पैसे भेजो। पैसे भेजो।' चिल्ला रहा है। आज उसे भी लिख दिया—'मैं एक अच्छी पोजीशन वाला आदमी हूं। रुपये भेजकर अपना स्टेण्डर्ड डाउन नहीं करना चाहता। रुपये कमाने के हजार रास्ते हैं।'

'यह तो बहुत बुरा लिखा आपने।' दीपा तीखे स्वर में बोली—'ससुर जी को रिटायर हुए करीब तीन माह बीत गये हैं। लगभग सवा-सौ पेन्शन के मिलते हैं उन्हें। क्या इतने में छ: प्राणियों का पेट भरा जा सकता है, इस मंहगाई में?'

'भरने वाले भरते ही हैं। फिर हमने क्या सबका ठेका ले रखा है?'

'अपने घर वालों की जिम्मेदारी तो आप पर ही आती है।'

'बकवास मत करो।'

'सच को आप बकवास कहते हो?'

उत्तर में मेरा एक तमाचा दीपा के गाल पर जा पड़ा। वह चुप हो गई। आखिर तक इस विषय में चुप रही। बस खामोशी से प्रत्येक वर्ष एक बच्चे की संख्या बढ़ाती गई। जैसे-जैसे घर के सदस्यों की संख्या बढ़ती गई। वैसे-वैसे खर्च भी बढ़ता गया, पर स्टेण्डर्ड जहां का तहां खड़ा रहा। इस कारण धीरे-धीरे कर्ज का बोझ मेरे सिर पर बढ़ता गया। ग्यारहवें बच्चे तक तो मेरे पर कर्ज का बोझ इतना बढ़ गया कि मेरा अ-

से निकलना ही कठिन हो गया। लेकिन झूठी शान की नींव पर, स्टेण्डर्ड के झूठे महल को खड़ा रखने के लिए मैंने बैंक से गलत तरीके से पैसा निकालना शुरु कर दिया।

मैं अभी लहरों के भरोसे पर अपनी जीवन नैया को पूरे परिवार को साथ लिए, बेईमानी के सागर पर, आगे बढ़ता चला जा रहा था कि एक भयंकर तूफान ने हमें आ घेरा। अचानक रिजर्व बैंक की चेकिंग पार्टी हमारे बैंक में आई और चालीस हजार रुपयों का गबन का मामला मेरे खिलाफ खड़ा कर गई। यह देखकर मेरी आंखें खुली की खुली रह गईं। मैंने सहारे के चारों ओर दृष्टि उठाई, पर अंधेरे के अलावा मुझे कुछ न दिखाई दिया।

माता पिता तो न जाने कब के इस दुनियां से कूच कर गए होंगे, पर भाई बहनों तक का पता न था कि वे कहां हैं? क्या कर रहे हैं?

किसी के लिए आस की किरण बना होता तो किसी से प्रकाश पुंज की आशा करता। फल यही निकला कि मुझे, मेरे एक सहयोगी के साथ, सुधार-गृह के मोटे–मोटे सींकचों के अन्दर बन्द कर दिया गया।

दस वर्ष बाद सींकचों से बाहर आया तो मैं स्टेण्डर्ड की परिभाषा ही भूल गया। बड़ी कठिनाई से बीवी-बच्चों का पता लगाया। पहले तो दीपा का कंकाल शरीर ही पहचानने में न आया। जब उसे पहचाना तो बच्चों के हालचाल पूछे। कुछ देर तक चुप रहकर धीमे स्वर में वह बोली– 'राजेश सप्लाई ऑफिसर बन गया है······।' मन को कुछ राहत मिली। वह बोलती गई······' मधु किसी के साथ भाग गई है। चंचल एक सेठ की लड़की को बेचकर फरार हो गया हैं। बीना और नवीन भगवान् को प्यारे हो गए हैं। और······।'

'बस! बस!' मैं चीख उठा।

'नहीं, सुनो। क्या अब स्टेण्डर्ड मेनटेन न करोगे?'

'भगवान् के लिए खामोश हो जाओ। मैं फिर चीख उठा।

'चिल्लाओ मत।' अभी थोड़ी देर पहले 'रोटी-रोटी चिल्लाते बच्चों को मार-मार कर सुला रखा है। वे उठ गए तो······' आगे कुछ न सुनने के लिए मैंने अपनी दोनों हथेलियों से कानों को दबा लिया पर भीतर ही भीतर मुझे लगा जैसे कुछ सुलग रहा है, श्मशान की अग्नि की तरह। जैसे कुछ चटक रहा है मुर्दे की खोपड़ी की तरह। इस पर भी मेरी आस चल रही थी। पूरे परिवार की सांस चल रही थी। एक आस पर कि राजेश कभी हमारी सहायता करेगा। पर जब इसी शहर में तीसरी बार व्यक्तिगत उससे मिलने गया, उसने फटकारते हुए कहा, 'मैं एक ऊंची पोजीशन वाला आदमी हूं आप लोगों को पैसे देकर मैं अपना स्टेण्डर्ड डाउन नहीं करना चाहता। मेहनत करो और खाओ। आगे से यहां, आकर मेरी पोजीशन डाउन न करना। जाओ।' मेरी आखों के सामने तीस वर्ष पूर्व की वह घटना घूम गई, जब मैंने अपने पिता को इससे मिलते-जुलते शब्द लिख भेजे थे।

'मैंने तो घातक शब्द लिखे थे, पर मेरे बेटे ने मेरे ही सामने कह दिए।' यह विचारते-विचारते मेरी आखों के सामने अंधेरा छाने लगा। न जाने मेरे डगमगाते कदम मुझे किस ओर ले गये।

—१३—

नीली कोठी

1

जीवन ने काल बैल के स्विच पर जब अंगुली रक्खी, त से शेखर का हृदय तेजी से धड़कने लगा। दरवाजा खुला। शेख जीवन के पीछे-पीछे चल पड़ा। कुछ देर बाद में दोनों ड्राइंग रूम पहुंच गये।

ड्राइंग रूम क्या था, परिस्तान था। फर्श पर इतने मोटे गुद कालीन, जिन पर चलते ही पैर धंसने को होते थे। स्टील का सो रेडियोग्राफ, फ्रिज, साटन के पर्दे, खिड़कियों पर कैक्टस के गमले, फूल आदि मिलकर एक जन्नत का सा नजारा उपस्थित कर रहे थे।

'गुड इवनिंग सर।' वहां सोफे पर बैठे अपने बॉस मिस्टर व को, किसी मोटी सी पुस्तक के शब्द सागर में गोता लगाता देख कर शेख बोला।

'अरे शेखर तुम।' चौंक पड़ने का अभिनय करते हुए मिस्टर वम मुस्कराते हुए बोले—'बैठो।'

जीवन ने लम्बा सेल्युट मारा और बाहर की ओर चल पड़ा। प शेखर अपने बॉस का स्नेह भरा स्वर सुनते ही सपनों की दुनियां में ख गया। उसके हृदय में मधुर संगीत की लहरें उठने लगी। उन लहरों के बीच रेशमा का काल्पनिक, दुल्हन स्वरूप चेहरा उसकी आंखों के साम उभर-उभर कर आने लगा।

मिस्टर वर्मा ने अपने सामने रक्खे सोफे की ओर इशारा करते हुए बोले, 'डोंट बी हेजीटेड। इसे अपना ही घर समझो।'

शेखर बैठ गया।

अब खामोशी वहां पसर गयी।

मिस्टर वर्मा कुछ देर तक खामोशी से पुस्तक के पन्ने पलटते रहे, फिर 'एक्सक्यूज़ मी' कहकर भीतर की ओर चल पड़े।

अब शेखर उत्सुक आंखों से भीतर की ओर खुलने वाले दरवाजे को देखने लगा। हर पदचाप के स्वर में वह रेशमा के हृदय की धड़कन सुनने लगा। पर कुछ देर तक जब सिवाय निराशा के उसके पल्ले कुछ न पड़ा तो वह सामने रक्खी सुन्दर छोटी सी गोल मेज़ पर पड़ी, दो तीन नई फिल्म पत्रिकाओं में से एक को उठा कर, बेचैन मन से उसके पन्ने पलटने लगा।

कुछ समय बीता। आखिर एक गुड़िया सी, अधेड़ उम्र की महिला ने मि० वर्मा के साथ ड्राइंग रूम मे प्रवेश किया। मि० वर्मा के, उन दोनों का एक दूसरे का परिचय कराते हो, दोनों के चेहरे खिल गए। अभी दोनों ने, अभिवादनों का आदान-प्रदान किया।

'तुम्हें पहली बार, देखकर बहुत खुशी हुई है बेटा। मिसेज़ वर्मा शेखर के समीप बैठती हुई बोली–'कहां थे अब तक तुम?'

'यहीं था।' शेखर सकुचाता हुआ मुस्करा उठा।

'शरमाओ मत।' मिसेज़ वर्मा ने शेखर के कंधे पर हाथ रखते, हुए कहा–'यह तुम्हारा ही घर है……।'

शेखर उस मधुर स्पर्श से कांप सा गया।

'कब से हो इस शहर मे?'

'करीब एक वर्ष से।'

'अकेले ?'

'जी।'

'बहुत परेशानी होती होगी।'

'जी……। डेडी ने तो कई बार मुझे लिखा कि नौकरी छोड़ दो ……गांव आकर जमीन जायदाद सम्भाल लो।……लेकिन पढ़ाई का पूरा पूरा लाभ उठाए बगैर मन नहीं मानता। जिसके कारण……। कहते कहते शेखर रुक गया।

'जरूरत भी क्या है पढ़ लिख कर अनपढ़ों के से काम करने की। ……आखिर पूरी जमीन जायदाद है तो तुम्हारी ही।'

'इकलौता बेटा जो हूं।'कहकर शेखर हंस पड़ा। पर दो तीन सात पश्चात् लापरवाही से बोला,–'इसलिए मुझे पैसों की चिन्ता नहीं है।,

'घर गृहस्थी जमाने की तो चिन्ता है।' कहते कहते मिसेज वर्मा हंस पड़ीं। मि० वर्मा ने भी उनका साथ दिया।

'चिन्ता नहीं, इच्छा है। शेखर बोला।

'यह भी तो अब पूरी हो जायेगी।' कहकर मिस्टर वर्मा ने पत्नी की ओर मुसकराकर देखा। वे मुसकरा दीं। शेखर शरमा गया।

'अभी आई बेटा।' कहकर मिसेज वर्मा भीतर की ओर रवाना हो गई।

फिर रुक रुक कर खामोशी वहां पसरने की कोशिश करती रही।

आठ दस मिनट पश्चात्, एक नौकरानी ने चाय नास्ते से भरी, एक ट्रे लेकर वहां प्रवेश किया। अभी वह चाय नास्ते की चीजों को मेज पर सजा ही रही थी कि तभी वहां एक चीख सुनाई पड़ी, जैसे किसी ने किसी का गला दबोचा हो। शेखर का हृदय कांपा। मि० वर्मा ने माथा रगड़ा।

शाम्नगी तब भाई, जब कुछ देर बाद मिसेज वर्मा ने एक दुल्हन सी सजी सुन्दर लड़की के साथ वहां प्रवेश किया।

शेखर ने पल भर में ही अनुमान लगा लिया कि वही उसकी जीवन संगिनी है। उसके अन्धेरे संसार का चिराग है। वह अपलक उसे निहारता हुआ उसके रूप सागर में डूब गया। भूल गया वह कि मिस्टर व मिसेज वर्मा भी वहां उपस्थित हैं। उस समय तो वह और भी होश गवा बैठा, जब मिसेज वर्मा ने रेशमा का हाथ पकड़ कर उसे उसके समीप सोफे पर बैठा दिया। रेशमा के तनिक स्पर्श से ही उसका रोम रोम सिहर उठा।

'देख लो बेटा मेरी रेशमा को। अपने जीवन साथी को। मेरे कलेजे के टुकड़े को।' मिसेज वर्मा बोली।

यह सुनते ही शेखर के 'नशे' को एक झटका लगा। उसने सकुचा कर गर्दन झुका ली।

चाय ठंडी हो रही है। मि० वर्मा बोले।

'सॉरी। ····· मैं तो भूल ही गई।' मि० वर्मा के समीप बैठते हुए मिसेज वर्मा बोली–'आज तो रेशमा बनायेगी चाय। ·· · क्यों रेशमा?'

'रेशमा ने गम्भीरता से पलकें उठाकर मां की ओर देखा। फिर बड़ी मुसकराहट के साथ चाय तैयार करने लगी।

चार क्षणों में चाय तैयार होते ही मिस्टर वर्मा आश्चर्य भरे स्वर बोले–'अरे मिठाई नमकीन तो ज्यों का त्यों पड़ा हुआ है।' मिसेज वर्मा शेखर की ओर देखती हुई मुसकराती हुई बोली–'खाओ बेटा शेखर। मिठाई खाओ। यह शुभ घड़ी जीवन में बार बार नहीं आती।·········क्यों मि० वर्मा।'

'बिलकुल।'

वे दोनों हंस पड़े। फिर शेखर रेशमा पर और रेशमा मां पर उड़ती दृष्टि डालकर मुसकरा उठे।

शेखर की क्रोधाग्नि एकाएक भड़क उठी। वह तेज़ी से
से बाहर निकल गया।

शेखर के बाहर ग्राते ही उसे जीवन मिला। एक लम्बा ल
ठोक कर मुसकराता हुआ वह बोला— 'ले लिया साथ नीली कोठी
आनन्द।'

उत्तर में शेखर ने जीवन के एक थप्पड़ मारा, दूसरा फिर तीस
उसके बाद वह उसे लातों और घूसों से अधमरा कर, एक टॅक, में ध
देकर आगे बढ़ गया। चारों ओर से घिरती भीड़ में से किसी का स
न हुआ कि कोई उसे रोक ले।

स्वागत

दिल्ली जंक्शन पर अपने छोटे से परिवार को लेकर गाड़ी से उतरते ही मैंने एक सरसरी दृष्टि चारों ओर डाली, इस विचार से कि कहीं घर का कोई आया सदस्य भटकता नहीं फिरे। पर जब चार पाँच मिनट प्रतीक्षा करने के उपरान्त हमें कोई पूछने वाला दिखलाई न दिया तो मैं पोटलीनुमा बिस्तर को कंधे पर रख, टूटे से ट्रंक को हाथ में पकड़कर, पत्नी की ओर गम्भीरता से देखता हुआ बोला– 'चलो।'

पत्नी ने नाक मुंह सिकोड़कर उपेक्षा भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा फिर संजय को गोद में उठाकर तीखे स्वर में बोली– 'चलिये।'

प्लेटफार्म से बाहर आकर कुछ देर तक आपस में वार्तालाप करने के बाद हमने एक रिक्शा पकड़ी और चांदनी चौक में स्थित अपने मकान में पहुंच गए। पूरे घर में कुछ देर के लिये एक हलचल सी मच गयी। पिताजी व छोटे भाई-बहन हमें घेर कर बैठ गए। अपना अपना दुःख दर्द सुनाने लग गए। हमारे दिलों में भी मां का हमारे बीच न होने का दुःख उभर आया, यद्यपि वे हमारे बीच से करीब एक वर्ष पूर्व ही सदा के लिये उठ गई थीं। उस उदासी के माहौल में मैंने अपना ट्रंक खोला। एक खुशी की आभा सबके उदासी से भरे चेहरों पर झलकने लगी। लेकिन जब मैंने शोभना की शादी के लिये गुलाबी कागज में सुन्दरता से लिपटा, लाल

रीबन से बंधा, एक पैकेट उसे गुदी गुनी, यह कहकर देते हुए कि 'लो शोभना हमारी ओर से यह छोटी सी भेंट', ट्रंक बंद कर दिया तो सब भाई बहनों, यहां तक कि पिताजी का चेहरा उदासी के बोझ से लटक गया थोड़ी देर बाद धीरे धीरे जब सबने वहां से खिसकना शुरू किया तो मैं असमंजस में पड़ गया। संजय के 'तोती खाऊँ।'– मम्मी मैं तोती खाऊंगा। चिल्लाने पर मुझे चेतना सी आई। मैंने पलकें उठाई तो देखता ही रह गया। वहां उदास बैठी पत्नी व रोते बच्चे के अतिरिक्त कोइ न था। 'शोभना!' अधिकार में भरे स्वर में मैंने पुकारा। कोई उत्तर न आया। दुबारा पुकारने पर शोभना आई। बोली 'कहो भइया क्या बात है ?'

'अरे शोभना देखो रोटी तैयार हो गई है तो संजय को ला दें। 'संजय बेटा बस रोटी, बनने वाली ही है। अभी दाल पक रही है।' संजय के सिरपर हाथ फेरती हुई शोभना प्यार भरे स्वर में बोली 'सबसे पहले तुझे ही रोटी दूंगी।' फिर वह हम दोनो की ओर मुडकर गम्भीरता से बोली- हमें तो आज आप लोगों के आने की याद ही नहीं रही नहीं तो ......।' 'मैंने तो सप्ताह भर पूर्व ही आने की बात लिख दी थी। ...... खैर कोई बात नहीं।'

शोभना चली गई। पत्नी ने फुंफकारते हुए जल्दी से बिस्तर खोला और सफर से बची हुई आधी रोटी, एक पुराने कपड़े में से निकाल कर, संजय के हाथ में थमा दी। वह बिना शिकायत के उस रोटी को चबाने लगा। मन में आया कि संजय के हाथ से रोटी छीनकर कुत्ते को डाल दूं, लेकिन खामोशी से बाहर निकल गया।

दोपहर को भोजन करने के बाद से ही मैं शोभना की शादी की तैय्यारी में लग गया। पिताजी जैसा आदेश देते, वैसा करता जाता।

उस दिन, काफी रात बीते में किसी कार्य को पूरा करके घर लौटा था कि बैठक के समीप आते आते एक तीर कानों पर लगा। पिताजी

रहती । एकान्त में कह देती— 'कहां ला पटका । ना समय पर खाने का पता न पीने का । मंजन का शरीर आधा हो गया है । और तुम्हें देख कर लगता है, जैसे किसी ने बचा खुचा मांस भी तुम्हारे शरीर से नोच खाया है । मेरी तो बात ही छोड़ो ।......'

'देखो इस तरह विष उगलने कुछ नहीं होता । जिस काम को सम्पन्न करने आए हैं, वह अच्छी तरह हो जाए, तभी यात्रा सफल समझो,' मैं समझाता ।

लेकिन पत्नी फिर वार करती— 'हां । हां । विष तो मैं ही उगलती हूं । तुम्हारे घर वाले तो अमृत की वर्षा करते हैं ।......'

इस तरह की वहम में मेरा मन खिन्नता से पूरी तरह भर जाता फिर भी विवेक से कार्य करता हुआ मैं अपने फर्ज को पूरी तरह तो नहीं, हां, काफी हद तक निभा पा रहा था ।

अब दो दिन शोभना की बारात आने में रह गए थे । दोपहर में भाई साहब का एक्सप्रेस टेलीग्राम मिला— 'कल सुबह की गाड़ी से हम दिल्ली पहुंच रहे हैं ।' तार क्या था तूफान था । तूफान । जिससे पूरा घर हिल गया । पिताजी का सब भाई बहनों को आदेश मिला कि पूरे घर और एकदम चमका दो ।......सबको सुबह जल्दी उठकर तैयार होना है ।'

रात को काफी समय तक छोटे भाई बहन एक जगह बैठकर भाई साहब व उनके परिवार के स्वागत के विषय को लेकर, वार्तालाप करने लगे । शोभना बोली— 'अरी अचला तुझे पता है कि जूही को क्या अच्छा लगता है ?

'हां क्यों नहीं । जूही को सैंडविच अच्छे लगते हैं ।'

'करेक्ट ।......बिलकुल ठीक । और भाभी जी को ?'

'मैं बताऊँ दीदी ?' किक्की बोल पड़ा ।

'बता ?'

पर चिकोटी काटते हुए उपेक्षा भरे स्वर में कहा—'सुन लिया ?'

'मामूली नौकरी मिली, तभी से इसी कारण सुनता आ रहा हूं। लेकिन……।'

पत्नी ने एक हाथ की एक अंगुली मुंह पर रख कर मुझे आगे बोलने से रोक दिया और दूसरे हाथ की एक अंगुली से सीढ़ियों की ओर ऐसे इशारा किया जैसे कह रही हो कि कोई आ रहा है। वास्तव में ही दो तीन पल पश्चात अचला हमारे सामने खड़ी हो गई। एक दो पल हमें आश्चर्य भरी दृष्टि से निहार कर बोली—'अरे आप लोग यहां बैठे हैं। घूमने नहीं गए ?'

'संजय की तबियत खराब सी लगी। फिर जाना ठीक न लगा। ऊपर आकर बैठ गए।……बैठो।' मैं बोला।

'हम तो सोच रहे थे आप चले गए होंगे।' कहते कहते अचला नीचे उतर गयी।

'देखा संजय की तबियत भी नहीं पूछी।' पत्नी दांत पीसती हुई धीरे से बोली। पत्नी के उन आग में बुझे शब्दों को सुनकर मन में आया कि या तो अपना सिर फोड लूं। या फिर पत्नी का फोड़ दूं। पर धीरे से यही कह पाया गरीब का कोई अपना नहीं होता हेमू।

पत्नी ने ऐसे गर्दन हिलाई जैसे कह रही हो कि अभी हुआ ही क्या है, ये तुम्हे पूरा निचोड़ कर ही दम लेंगे।

प्रातः हुआ। एक नई हलचल सी मच गई घर में। सब खुशी खुशी अपने अपने कार्यो में लगे हुए थे। पिताजी भी शादी की दौड़ धूप रोककर बार बार घर का निरिक्षण कर रहे थे, जैसे इन्सपेक्टर के आने की सूचना पाकर, किसी स्कूल का हैडमास्टर करता है।

गाड़ी आने में अभी एक घंटा बाकी था, लेकिन पिताजी मुझे अचला व विक्की को साथ लेकर रेलवे जंक्शन की ओर चल पड़े।

पौन घन्टा लेट होने के बाद पंजाब मेल आया। फिर भी किसी के चेहरे पर कोई शिकन न थी। सबने फर्स्ट क्लास के कम्पार्टमेंट में खड़े भाई साहब को हाथ हिलाकर अभिवादन किया।

गाड़ी रुकने तक हम सब, भीड़ को चीरते हुए उनके समीप पहुंच गए थे। मेरे अतिरिक्त सबने उनसे हाथ मिलाया, पर जब मैंने उनके पैर छूए तो सब उपेक्षा से हंस पड़े। हंसी का दौर समाप्त होते होते पिताजी बड़ी आत्मियता से बोले— 'बेटा रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई तुम लोगों को?'

नहीं डैडी। हमने पूरा कम्पार्टमेन्ट रिजर्व करा लिया था?'

'ठीक किया बेटा।'

मेरा ध्यान अन्दर फर्स्ट क्लास की गद्दीदार लम्बी चौड़ी सीट पर गया। तब याद आया अपना सफर। उस दिन हमारे थर्ड क्लास के कम्पार्टमेन्ट में तिल रखने को भी जगह न थी। बस अपने ही बिस्तर व ट्रंक पर हमें ऐसे बैठे हुए आना पड़ा था, जैसे किसी ने हमें सांचे में ढाल दिया हो।" दो कुलियों को इशारा कर भाई साहब नीचे उतर गए। तभी अचला बोली 'भाभी और जुहीत ……।'

'भाई साहब मुस्कराते हुए कहा— 'भीतर…।'

पल झपकते ही दोनों भाई बहन भीतर घुस गए। और दो चार पल पश्चात भाभी, जुही गोद को में लिये, अचला और किक्की कम्पार्टमेन्ट से उतरे।

'सामान कहां है?' 'पिताजी आश्चर्य से बोले?' 'कुली ला रहे हैं।' भाई साहब हंसी दबाने का असफल प्रयत्न करते हुए बोले।

दो कुलियों को चार सूटकेस दो डाल डाल व अन्य खूबसूरत चीजें लेकर उतरते देखा तो मेरी आंखों के सामने अपनी पोटलीनुमा बिस्तर व टूटा ट्रंक घूम गया। मन में आया कि जब दो सगे भाइयों में इतनी असमानता है तो दूसरों से क्यों न हो? क्यों हम समानता का गीत गाते हैं।

कुलियों के आगे आगे व हमारे पीछे पीछे चलते मुझे अपने वे क्षण भी याद आ ही गए, जब मैं अपने परिवार को लेकर करीब करीब इसी समय यहां उतरा था। कुछ देर इन्तजार करने पर भी कोई न आया था।

चलते चलते पिताजी ने जुही को अचला की गोद से लेते हुए पूछा 'कैसे हो वेटा?'

'ओके।'

'अरे तुम तो अंग्रेजी भी बोलती हो।' 'मम्मी और डेडी मुझे घर पर अंग्रेजी ही पढ़ाते हैं। आपको हमारे घर पर एक भी हिन्दी की किताव न मिलेगी जी।'

सव गर्व से हंस पड़े पर मैं गम्भीरता पूर्वक कनखियों से अंग्रेजी लिवास में लिपटी अपनी उस पांच वर्षीय भतीजी को कुछ देर तक देखता रहा और फिर मैंने एक उड़ती दृष्टि भाई साहव व भाभी पर भी डाली, जो ईंगलिशस्तान व हिन्दुस्तान के फेशनों के मिक्चर की दो वोतलें लग रही थी।

हम इस प्लेट फार्म से वाहर आकर दो टैक्सियों में वैठकर कुछ ही देर में घर पर पहुंचे।

दरवाजे पर खडी शोमना ने लपककर टैक्सी में से ही जुही को गोद में ले लिया और भाभी का हाथ थामे भीतर की ओर ऐसे चल पड़ी, जैसे नई दुलहन को घर प्रवेश कराया जा रहा हो। उनके पीछे पीछे छोटे भाई वहन रवाना हो लिये।

कुछ देर वाद नौकरों के साथ सामान को लेकर मैं, पिताजी व भाई साहव के साथ ड्राइंगरूम में आया तो देखा फर्स पर वैठा संजय, छोटी सी गोल मेज पर वैठी जुही को टुकुर टुकुर देख रखा है। जैसे तीन वर्ष की उम्र से ही गरीवी व अमीरी के फर्क को तोल रहा हो। मुझे एक

हर खामोशी से हर कमरे में देखता हुआ रसोईघर में पहुंचा। वहां वह रोटी बना रही थी। नम्रता से बोला— 'यहां क्या कर रही हो तुम, भाई साहब व भाभी जी आ गए हैं।

'मैं क्या करूं? मुझे तो हम दोनों के लिये भोजन बनाने का हुक्म हुआ है?' क्रोध से भीरु, दबी जुबान से पत्नी बोली।

'बाकी क्या खायेंगे?'

'होगा कोई पुलाव वगैरा।'

'तो तुम भाई भाभी से तो मिल लो।' इस समय मेरा स्वर कुछ तीखा हो गया था।

पत्नी ने हाथ में पकड़े चिमटे को नीचे पटका। मन ही मन बड़बड़ाती हुई उठी। मैली सी साड़ी से हाथ पोंछे। नाक मुंह सिकोड़कर, मेरे पीछे पीछे चल पड़ी।

हमारे ड्राईंगरूम में पहुंचते ही मंजन चीख उठा— 'मौसी आई।'... मैं भी मौसी पास जाऊंगा मम्मी।' उसका इशारा गुड्डी के हाथ में पकड़े [illegible] की ओर था।

'इसमें अण्डा होता है।' कहकर मैंने मंजन को गोद में ले लिया। पर वह उसके लिये जिद करता रहा। कुछ देर तक बच्चों की ओर से ध्यान के लिए सहानुभूति पूर्ण बातों की झड़ी लग गई। इस बीच भाई साहब ने थैले में से बिस्कुट का एक पूरा पैकेट निकालकर उसमें से दो चार बिस्कुट मंजन के हाथ में थमा दिये थे। पत्नी ने अभिवादन की पूर्ति कर दी थी और बोतल उठाकर चली गई थी। फिर कुछ देर बातों का [illegible] [illegible] हो गई थी। अब हम लोग, इधर उधर की बातें कर, [illegible] के लिये [illegible] ठेकेदारी पर विचार करने लगे।

इतनी बातें चल ही रही थी कि [illegible], भाई साहब ने

भाभी के लिये एक बड़ी प्लेट में नाश्ता ले आई। छोटे भाई-बहन वहां से खिसक गए। पिताजी पहले से ही खाने पीने का सामान लेने के लिये बाजार गए हुए थे। मुझे वहीं बैठा देखकर शोभना हंसते हुए बोली–'आप तो वेजीटेरियन हो न!......यह तो नानवेजीटेरियन......।'

'तो क्या हुआ? हम तीनों तो दाल रोटी के साथी हैं। जब तैय्यार हो जाए तो बुला लेना।'

सब हंस पड़े।

कुछ देर बाद पिताजी खाने के लिये ढेर सा सामान ले आए। चूल्हा तो गरम था ही। दो स्टोव एक साथ और गरम कर दिये गए। तरह तरह की भोजन सामग्रियों की तैय्यारी से घर, महक से भर गया।

भोजन की तैय्यारी के बीच, भाई साहब ने, बैड रूम में पलंग पर लेटे लेटे, भाभी से, बादामी रंग का ठंडा सूट निकालने को कहा। यह खबर कुछ ही पलों में, बेतार की तरह, घर के सब सदस्यों के कानों में जा पहुंची। अधिकतर अपना अपना काम छोड़ छोड़ कर धीरे धीरे बल्ब पर मंडराने वाले पतंगों की तरह, उन दोनों के इर्द गिर्द मंडराने लगे। पहला सूटकेस खोलते भाभी बोली— 'अरे इसमें तो साड़ियाँ हैं।' दूसरा सूटकेस खोल कर माथे पर हाथ मारती हुई व बोलीं- 'ओ हो इसमें तो जी ही के कपड़े व मेरे बलाउज है।' अब उन्होने एक एक कर अन्य दोनों सूटकेस भी खोल दिये। फिर एक में से बादामी रंग का सूट निकाल कर चारों सूटकेसों को बंद कर दिया। उस समय सब भाई बहनों की दशा ऐसी हो गई, जैसे उनके पास से सांप गुजर गया हो।

'क्यों रे राजेश क्या तुझे मेरा पत्र नहीं मिला था?'

अचानक आए इस क्रोध भरे स्वर ने हम सबको चौंका दिया। घूम फिर कर हमारी दृष्टि जब, कमरे के बाहर खुली खिड़की के पास तमतमाए चेहरे को लिये खड़े, पिताजी पर पड़ी, तो पलभर को हम सब घबरा गए। पर भाई साहब निडरता से अध लेटे होकर बोले, 'मिला।'

'तो फिर तूने उस पर अमल नहीं किया ?'

दो दिन पलों को भाई साहब एकदम गम्भीर हो गए। चेहरे र क्रोध की लालिमा झलक आई उनके पर फिर जैसे क्रोध की घूट को गटकर बोले– 'आप तो जानते ही है डैडी कि जिस इन्सान की जितनी आमदनी होती है, वैसा ही खर्च भी होता है। फिर पैसा बचे कहां से ?·····'

पिताजी का चेहरा और तमतमा गया। भाई साहब कहते गए- यदि किसी चीज की कमी पड़ रही है तो मैं यहां चादनी चौक से खरीदकर, शोभना को प्रजेन्ट के रूप मे दे दूंगा और यदि ज्यादा ही चीजों की भी कमी पड़ रही है तो मैं यहीं स्थित अपने दोस्त की दुकान से ठीक दाम पर दिलवा दूंगा। पैसे कभी भी चुका देना उसे।'

'बस। बस। मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं। किसी चीज की जरूरत नहीं।' गरज कर कहते हुए पिताजी तेजी से बरामदे की ओर बढ़ गए। तभी रसोइघर से किसी चीज के जलने का एक बदबूदार झोंका आया।

—●●—

पहुंची कि उसे क्षय रोग है तो उसके हृदय में शशि के लिए उपजा प्यार का बीज हृदय में फंसी निराशा की मिट्टी तले दब गया। वह मां के समीप पहुंचा, टूटे स्वर में बोला– 'मां, अब गांव लौट चलें।'

'क्यों बेटा ?'

'मां अनजान न बनो।······तुम्हें मालूम ही है कि मुझे क्या रोग है ?······इतना पैसा कहाँ से आयेगा ?······

मां भीतर ही भीतर आंसू पीती हुई बोली– 'बेटा कैसी बातें करता है। हम अपनी जमीन बेच देगें। सामान बेच देगें। क्या बेटे से भी बढ़कर कोई धन है ?'

सुधीर का इलाज सुचारु रूप से चलने लगा। शशि रोज शाम को सुधीर की बीमारी के विषय में, कभी उससे और कभी उसकी मां से पूछ जाती। फिर भी सुधीर को लगा कि उसकी गरीबी व बीमारी के कारण ही शशि भी उसके समीप आती हिचकिचाती है। उसकी भी कोई जिन्दगी है। ऐसी जिन्दगी जीने से तो मरना अच्छा है। पर एक दिन उसके मन का मैल धुल गया, जब उसने देखा कि शशि ने उसके कमरे की ओर आते हुए अपने नौकर को बाहर गैलरी में ही रोक कर उसके हाथ से, दवाइयों का एक बिल लेकर. एक मुठ्ठी में दबे रुपये देते हुए कहा– 'सुधीर, जी ने रुपये मुझे दे दिये थे।··· समझा।'

'जी।'

'जा पापा को दे आ।'

'अच्छा बीबी जी।'

नौकर चला गया। शशि, सुधीर के कमरे में आ गई थी। सुधीर एक टक उसे निहारता रहा।

'ऐसे क्यों देखते हो, पिक्चर के हीरो की तरह।' शशि हंसते हुए बोली'– दवाई ली या नहीं ?'

'कोई उत्तर न पाकर शशि ने फिर सुधीर की ओर देखा। वह अवाक् खड़ी रह गई, जब उसने देखा कि सुधीर आखों में अश्रुधाराएँ बह रही हैं। वह सुधीर के पलग की ओर लपकी।'

'क्या हो गया तुम्हें ?' सुधीर के पास पलग पर बैठ कर, शशि बोल उठी– 'तुम्हें क्या दुःख है ?' कहते-कहते शशि का गला भर आया। उसकी आँखें गीली देख कर सुधीर ने अपने आंसू पोछते हुए कहा– 'मेरे लिए इतना त्याग न करो।'

'त्याग ?' शशि आश्चर्य भरे स्वर में बोली। 'मैं क्या कर पा रही हूँ तुम्हारे लिए।' फिर दूर शून्य की ओर देखते हुए वह बोली–' लोग दूसरे की खुशी के लिए अपने प्राण भी दे देते हैं।.......' वह भूल गया कि वह, शशि के किस त्याग पर एतराज प्रकट करना चाहता था। उसी क्षण से उसने जीने का पूरा अर्थ समझा था।

कुछ दिनो पश्चात सुधीर का कुम्हलाया चेहरा खिलने लगा। शशि उसे हर चेहरा खुश दिखाई देता। अभी सुधीर, शशि के साथ दीप जीवन बिताने की मधुर कल्पनाएं कर ही रहा था कि उसकी खुशियों के हिलाने पर एकाएक बिजली टूट पड़ी, जब शशि रोज की भांति उस शाम उसके हाल चाल पूछने नही आई। उसने मां से पूछा था– 'मां, शशि नहीं आई आज ?'

'अरे बेटा मे तो बताना ही भूल गई ....।'

'क्या ?'

'शशि की एक सप्ताह बाद बारात आने वाली है।' सुधीर एक टक मां को देखता रहा था, जैसे उसे अपने कानों पर विश्वास न हो रहा हो। मां कहती गई– 'बेचारी की एक वर्ष पूर्व शादी तय हो गई थी पर उसके ऐसे भाग्य थे कि लड़के की शादी तय होते ही विदेश जाना पड़ गया ....जोड़ी अच्छी रहेगी। शशि भी तो मेम सी लगती है।' सुधीर

को लगा जैसे मां उसके ताजे घाव पर नमक मिर्च छिड़क रही है। वह करवटें बदल कर लेट गया।

मां हंसती हुई बोली— 'दुःखी क्यों होता है ? कुछ दिन ससुराल रह कर वह तो फिर लौट आयेगी। 'सुधीर की रुलाई फूट पड़ी। मां लपक कर उसके पास पहुंचीं और उसके दुःख का कारण पूछती रही। प सुधीर ने जुबान न खोली।

देखते ही देखते शशि के दरवाजे पर शहनाई गूंज उठी। सुधी को लगा जैसे यमराज उसे पुकार रहा है। भीतर ही भीतर उसके हृद में कुछ सुलगने लगा। तभी मां खिड़की खोलती हुई बोली— 'बेटा आज भी खिड़की नहीं खोली, शशि की बारात आ गई है।'

सुधीर ने गर्दन हिलाई जैसे कह रहा हो—"हां हां मैं जानता हूं।" तभी उसे याद आया कि कल शशि ने पूछा था कि "कल तो घर आओगे ?" वह बहुत कठिनाई से हां······हां······क्यों नहीं" रूखी मुस्कुराहट होठों पर बिखेरते हुए कह पाया था। तभी वह उठा और मण्डप में जा बैठा। हवन की अग्नि उसे श्मशान की अग्नि की भांति अखरने लगी। जब वह, मन्त्रोच्चारण समाप्त होने पर, अपने पलंग पर आ बैठा तो फिर न उठ सका। अगले दिन मां के कहने पर—"कि तुझे शशि बुला रही है, उसे विदा तो कर दे ?" वह न उठ सका।

शशि चली गई थी और एक सप्ताह पश्चात् आज लौटी। वह फिर भी न उठ सका। उसे लगा जैसे वह मौत का सन्देश लेकर लौटी है। पर शशि के उसके पास आते ही वह पलंग पर उठ बैठा। शशि एकटक उसे देखती रही। फिर भर्राये स्वर में बोली—"क्या हो गया है सुधीर तुम्हें ?"

"मुझे ?······कुछ नहीं।······ठीक हूं।"

"झूठ बोलते हो।······मां कह रही थी कि मेरे ससुराल जाने

पर तुम न समय पर दवाई लेते हो और न समय पर भोजन करते हो ?"

"यूँ ही कह रही होगी।"

"तुम्हारा चेहरा तो गलत नहीं कह रहा है।" भीगे स्वर मे शशि बोली–"मुझसे नाराज हो गए ?"

सुधीर की समझ में न आया कि वह, उसके प्रश्न का क्या उत्तर दे ? भीतर ही कड़वी घूँट पी गया।

शशि ने फिर निस्संकोच, सुधीर की सेवा करनी शुरू की। कुछ दिनों पश्चात् उसके पति के बार बार पत्र आते रहे–"जल्द आओ।" पर वह टालती रही। दो माह बीत गये, पर सुधीर की दशा सुधरने के बजाए बिगड़ती गयी।

एक दिन, जब शशि के पिता ने सुधीर के ठीक होने की आशा छोड़ दी तो, शशि सुधीर के पास आकर चीख उठी–"यह तुमने क्या किया सुधीर......"

"जिसकी कभी कल्पना न की जा सकती थी।"

"क्या मतलब ?"

"सुनकर क्या करोगी ?"

"मैं......? क्या तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं ?"

"विश्वास ? विश्वास का गला घोंट कर विश्वास को कलंकित करती हो ?"

"सुधीर।" शशि फिर चीख उठी–"तुम्हें क्या हो गया ?"

"शशि मैं फिर कहता हूँ कि अब मुझे और न बहकाओ।...... मुझे मझधार में ही पड़ा रहने दो......तुम्हें किनारा मिल गया, ईश्वर का लाख लाख शुक्रिया......।"

"आह।" शशि के मुंह से एक हल्की चीख सी निकली। उसकी आंखें मुंद गई। दीवार से सिर जा टकराया। सुधीर ने उसकी बांह पकड़ कर झकझोरते हुए कहा—"यह क्या पागलपन है······।"

"काश यह पागलपन होता······।"

"सुधीर तुमने मुझे गलत समझा। एकदम गलत।······मैंने एक सच्चे मित्र के नाते सदा तुम्हें अच्छा होने की इच्छा करती रही। तुमने मेरे प्यार को इतना गलत समझा?······क्या हर प्यार का अर्थ शादी होता है?"

"नहीं।······मौत।"

"ऐसा न कहो। सुधीर ऐसा न कहो।"

कहते-कहते सुधीर के सीने पर सिर रख कर वह फफक उठी। अभी शशि का सिर सुधीर के सीने पर ही टिका हुआ था कि किसी युवक ने कमरे में प्रवेश किया और उसके पीछे-पीछे सुधीर की मां ने।

"यह मामला है।" युवक बोला। शशि घबरा कर उठ खड़ी हुई। देखा उसके पति सामने खड़े हैं। कुछ पल उनकी ओर देखती हुई वह उनकी ओर लपकी। उनकी बांह पकड़ कर बोली—'देखो। देखो ये हैं मि० सुधीर।······और सुधीर ये हैं मि० कमल······।" कमल ने अपने हाथ को झटका देते हुए कहा—"मुझे मत छुओ।" शशि ने पुनः मजबूती के कमल का हाथ पकड़ कर कहा—"क्या तुम भी मुझे गलत समझते हो?"

कमल ने शशि को धक्का देते हुए कहा—"हटो।······दूर हट जाओ।"

"शशि, कमल के इस झटके से दूर जाकर गिरी। यह देखते ही सुधीर का शरीर क्रोध से कांपने लगा।'

वह गरजा—"मि० कमल यह पवित्र है।······गंगा की तरह पवित्र है······।" कहते-कहते उसे खांसी का दौरा-सा पड़ा। देखते ही

देखते ही उसे खून की उल्टियां होने लगीं। अब मां व शशि चीख उठीं—"हाय ये क्या ?" और सुधीर के समीप आ गईं। पर कमल दूर खड़ा एकटक क्रोध की दृष्टि से उसे निहारने लगा, जैसे कोई भूखा ग्रास छिन जाने पर देखता है।

कुछ पल शशि, सुधीर की आंसू भरी आंखों से निहारती रही। और मां उसका सिर व पीठ सहलाती रही। शशि बोली—"मैं पापा को बुला लाती हूं।" सुधीर ने गर्दन हिला कर इन्कार कर दिया। जब शशि न मानी और चल पड़ी तो सुधीर ने पूरी ताकत से पुकारा—'सुनो।"

"क्या ?" शशि उसके ऊपर झुकती हुई बोली। सुधीर बुझी-बुझी दृष्टि से उसे निहारता हुआ उखड़े स्वर में बोला—"तुमने कहा था न कि लोग दूसरों की खुशी के लिए प्राण भी दे देते हैं।...अब विदा दो...।"

कहते-कहते सुधीर का निष्प्राण शरीर, फर्श पर फैले, रक्त पर झूल गया।

शशि चीख उठी। मां की आंखें शून्य को, अपलक निहारने लगीं और कमल ने शशि के समीप आकर उसके कन्धे पर प्यार से हाथ रख दिया।

योगेश कि करवट के साथ विचारधारा भी पल्टी– 'अभी किशन है भी तो छोटा। वह क्या जाने ······दो प्रेमी विछड़ने पर कैसा दर्द, कैसी कसक, कैसी टीस प्रतीत करते हैं और मिलने पर कैसी खुशी, कैसा आनन्द, कैसी शांति का अनुभव करते हैं।······कहीं उसने मुझसे मिलने से पूर्व कोई स्वप्न तो नहीं देखा और मुझसे मिलने की खुशी में वह यह कहना भूल गया हो कि जो कुछ उसने कहा है वह कुछ देर पूर्व देखे स्वप्न की बात है।······पर उसने ऐसा देखा ही क्यों ?'

'मैं भी सचमुच पागल हो गाया हूं। असल में वह मुझे आजमा रहा होगा कि एक वर्ष पश्चात् मेरा शैला के प्रति कितना प्यार रह गया है।······पागल कहीं का। प्रेम को भी उसने कोई वर्फ का टुकड़ा/समझ लिया है, जो क्षण प्रतिक्षण घटता जाए।······वास्तव में कैसी बुरी बात सुनी मैंने भी यहां आते ही। हंसने आया था। ऑफिस की दिन भर की कशमकश को भूलने आया था। पर मिला क्या ?······ दर्द······।'

+ + +

'भैया अब तक करवटें बदलते रहोगे ?' निर्मल का स्वर सुनते ही योगेश की विचारधारा को एकदम झटका लगा और वह आंख मलता हुआ उठ बैठा। निर्मल का कहना जारी था– 'सूरज सिर पर आने वाला है। हाथ मुंह धोकर चाय तो पी लो।'

'थकान बहुत चढ़ी हुई है नीरू। यकीन न करोगी कि गाड़ी में तिल रखने को भी जगह न थी।'

'शैला भी एक दिन यही कह रही थी······।'

'क्या ?'

'यही कि गाड़ी में लोग इतने चढ़ने लग गए है, लगता है जैसे बेघरबारों की संख्या बढ़ गई है।' यह सुनते ही योगेश के होठों पर मुस्कराहट फैल गई।'

'प्लीज जल्दी करो...... ।'

'शैला के क्या हालचाल हैं ?' आवेश में योगेश पूछ बैठा ।

'बिगड़ी लड़कियों के क्या हाल चाल होते हैं......?' यह सुनते ही योगेश के कानों में किरन का इससे मिलता जुलता वाक्य...... 'शैला अब चरित्रहीन हो गई है ...... ।' बार बार घूमने लगा। निर्मल कहती गई...... 'मम्मी ने उसे आपके नौकरी पर चले जाने के बाद यहाँ आने को बिल्कुल मना कर दिया ।'

'क्यों ?' योगेश बोला। और तभी क्रोध से उसकी आंखें तन गई। मुँह सूख गया। हृदय की स्थिति क्षण-प्रतिक्षण बदलती गयी।

'उसकी करतूतों को देखकर।' निर्मल बोली, 'सुना था एक दिन वह कमल से कह रही थी कि योगेश के पिता के मरने के बाद उनके घर में खाने पीने के लिए लिये कुछ न रहा, तभी अधूरी पढ़ाई छोड़कर उसे नौकरी करनी पड़ी...... ।'

'नोऽ ।' योगेश चीख उठा— 'चली जाओ यहां से ।'

निर्मल खामोशी से खिसक गई वहां से। पर माँ लपकी हुई उसके पास आ पहुंची। पूरी बात सुनकर उसने प्यार से योगेश को समझाया। आखिर काफी देर पश्चात् उसके हृदय का बोझ किसी हद तक हल्का हुआ।

भोजन कर योगेश बाहर निकला। लेकिन उसकी समझ में न आया कि वह जाए कहां ? आखिर उसके कदमों ने उसे शैला के घर पर ला खड़ा किया। इस बीच उसके मन में यही चलता रहा कि आखिर वह शैला से पूछे तो सही कि उसने लोगों के दिलों में ऐसी गलत तस्वीर अपने लिये क्यों पैदा कर रखता है ?

पर शैला के विषय में उसके घर पर जब उसे पता चला कि वह कॉलिज गई है तो वह मन ही मन में मुस्काया यह विचार कर कि छुट्टियां उसने ली हैं शैला ने नहीं। वह कॉलिज की ओर चल पड़ा।

वह मुख्य द्वार पर लटके हुए एक धुंधले लैंप के समीप खड़े एक ठेले वाले के पास आ खड़ा हुआ। एक वर्ष पूर्व शैला से विदाई के समय खाई कसम– 'परेशानी के क्षणों में भी सिगरेट न पीऊंगा' को भूलकर उसने ठेले वाले से सिगरेट व माचिस की डिब्बियां खरीदी। अभी उसने सिगरेट होठों के बीच दबाकर, तिली जलाई ही थी कि किसी का अधिकार भरा स्वर– 'योगेश। क्या भूल गए……' उसके कानों पर पड़ा। योगेश की पलकें उठीं। सामने शैला को खड़ा देखकर वह सिगरेट जलाए बिना एक टक उसे निहारने लगा। जैसे कह रहा हो– 'मैं कसम तोड़ने जा रहा हूं। क्योंकि तुमने वह कसम 'कि तुम जीवन भर मेरा साथ निभाओगी,' न निभाई।

'क्या देख रहे हो योगेश? …क्या मुझे भूल गए?'

'क्यों आई तुम यहां?' सिगरेट को मसलता हुआ योगेश बोला।

'तुम्हें लेने।'

'क्या कुछ और शेष रह गया है देखना,' आगे बढ़ता हुआ योगेश बोला।

'क्या मतलब।' योगेश के साथ-साथ आगे बढ़ती हुई शैला बोली– 'मैं समझी नहीं।'

'बहुत भोली बन रही हो।'

'भोली? कैसी भोली। मैं तो वैसी ही हूं योगेश जैसी सदा थी।'

अब वे दोनों करीब करीब सुनसान स्थान पर आ गये थे। तभी योगेश का स्वर गूंजा– 'शैल, जहर पिलाकर अमृत न बताओ।'

'क्या कह रहे हो योगेश?' 'एकदम सामने आकर शैला बोली।

'अपने उस पापी मन से पूछो जिसने छल किया, वह भी मुझसे।'

'योगेश तुम्हें क्या हो गया है? मुझसे कोई गल्ती हो गई हो तो क्षमा करो।' हाथ जोड़ते हुए शैला बोली।

'गल्ती ? ···मैं होता ही कौन हूं क्षमा करने वाला।'

'एक वर्ष में इतना बदल गए हो ? ऐसी रूखी-रूखी बातें करते हो ? बताम्रो न क्या कचोट रहा है तुम्हें ?'

'अपनी आंखों से देखी बातें कचोट रही हैं।'

'क्या देखा तुमने ? जल्दी बताम्रो योगेश।'

'मैं क्या बताऊं उस बात को जो तुम स्वयं जानती हो तुम्हारा कलुषित हृदय जानता है।'

'स्पष्ट कहो योगेश' योगेश को झकझोरते हुए शैला बोली।

शैला के हाथों को दूर करता हुआ योगेश बोला— 'क्या कहूं मैं ? मुझे तुम्हारे पापी मन से घृणा है, अशुद्ध शरीर से घृणा है कलंकित चेहरे से घृणा है। जाम्रो कमल के साथ रंगरेलियां मनाम्रो—।

योगेश, शैला चीख उठी। उसे ऐसा लगा जैसे किसी ने उसके कानों में गरम गरम पिघला हुआ शीशा डाल दिया हो। उसने मजबूती से अपने होंठ भींच लिये। शैला को खामोश देखकर योगेश ने उस सर्द रात में माथे पर आई पसीने की बूंदों को पोंछा और खामोशी से अपने सामान की ओर लौट गया। यह देखकर शैला अपने हृदय में उठे तूफान से बुरी तरह घिर गई। उसकी समझ में न आया कि वह क्या करे ? क्या न करे ? उसने चारों ओर देखा। अचानक उसे एक ओर से दूर, बहुत दूर, ट्रेन का प्रकाश दिखाई दिया। उसकी बुझती हुई आशाओं को जैसे प्रकाश मिल गया हो। पल भर का भी विलम्ब न कर वह उस ओर दौड़ गयी।

योगेश अपने सामान तक पहुंचकर सिगरेट सुलगाने ही को था कि तभी एक ग्रामीण युवक उसके समीप आकर बोला— 'बाबूजी आपसे जो लड़की अभी बात कर रही थी न·······'

'हां······ तो ······?'

'उसे मैंने कुछ देर पहले गाड़ी की ओर भागते हुए देखा है। ···'

रवाना हो गयी। योगेश ने लपक कर शैला का हाथ पकड़ लिया। विनती भरे स्वर में बोला– 'मेरी समझ में नहीं आ रहा कि तुम कहना क्या चाह रही हो ? साफ साफ क्यों नहीं कहतीं।'

'योगेश तुम्हें मालूम नहीं है कि तुम्हारे केन्टीन के दरवाजे पर आने के आठ दस मिनट पूर्व किशन ने कमल को क्लास के बाहर बुलाकर उसके कान में कुछ देर तक कुछ कहा था। परिणाम स्वरूप कमल ने दो तीन मिनट पश्चात पिरियड ओवर हो जाने पर मुझसे कहा था चलो शैला केन्टीन में चलें।'

'क्यों ?' मैं आश्चर्य से बोली थी।

'आपको मेरे द्वारा आयोजित पार्टी की सूचना नहीं मिली क्या ? ......कागज पर आपके हस्ताक्षर तो हैं।' मस्तिष्क पर जोर देकर कुछ याद करती हुई मैं बोली थी 'शायद पार्टी तो सोलह को है। आज तो पन्द्रह है।'

'दोस्तों की मर्जी तो पार्टी आज व अभी खाने की है। वे वहां पहुंच भी गए हैं। चलो जल्दी चलो।'

'मैं सीधी तौर पर उसके साथ-साथ केन्टीन तक आई। पर वहां लिस्ट में लिखे विद्यार्थियों को बैठे न देखकर बोली– 'लगता है आपसे किसी ने मजाक किया है।'

'पार्टी तो मैं दे रहा हूं। मुझसे मजाक कर के कोई क्या लेगा। आओ बैठ जाते हैं। साथी लोग आते ही होंगे।'

मैं झिझकते–झिझकते वहां बैठ गई थी। अभी दो तीन मिनट भी न हुए थे कि मैं बोली– 'लोग मूर्ख बनाने में भी माहिर होते हैं।'

'लोग मूर्ख बनने में भी माहिर होते हैं।' कमल भी हंसता हुआ बोला था। फिर हम दोनों जोर से हंसने लगे थे। अभी हमारी हंसी का दौर समाप्त भी न हुआ था कि पता चला कि कोई केन्टीन के दरवाजे

पर चक्कर खाकर गिर पड़ा है। मेरी दरवाजे की ओर पीठ थी। मैंने मुड़कर देखा। पर मैं, भीड़ के कारण, शोर करने वालों को ही देख सकी। भीड़ छट जाने के बाद मेरी दो तीन सहेलियों ने केन्टीन में प्रवेश किया। मेरे पूछने पर– 'बाहर क्या हुआ?' एक हंसकर बोली– 'अपनों का भी तुम्हें ख्याल नहीं रहता।'

'कौन था? बताओ तो।'

'योगेश। वे हंसते हुए एक साथ बोलीं।

'योगेश।' मैं आश्चर्य से बोली और तुरन्त वहां से रवाना हो गयी थी। कमल पुकारता रहा– 'पैना सुनो। रुको तो।' पर मैं न रुकी। छुट्टी लेकर मैं सीधी तुम्हारे घर पहुंची। पर......।'

'ओह। यह बात थी।' गहरी सांस छोड़ता हुआ योगेश बोला।

'मैं तो दो बार तुम्हारे घर आई। पर ......'

'बस। बस। आगे कुछ न कहो। ......क्षमा कर सको तो कर देना।'

'कैसी बातें करते हो योगेश। देवता क्षमा करते हैं, पुजारी नहीं।'

'कभी कभी देवता भी क्षमा का पात्र बन जाते हैं पैना।' योगेश बोला 'क्षमा कर दो एहसान होगा।' यह सुनते ही पैना की आंखों में बदली उमड़ आई। अभी उसकी आंखों से कुछ बूंदें टपकी ही थीं कि उसने अपना सिर योगेश के कंधे पर टिका दिया और तब योगेश ने भी उसे अपनी बांहों में कस लिया।

कुछ देर बाद किसी की आहट से वे दोनों अलग हो गए और कैन्टीन की ओर रवाना हो गए।

—||—

लगाव

'वह आ गया है ?' वह कक्ष में प्रवेश करते ही बोली।

'कौन ?' एक बाबू बोला।

'वही !'

'अच्छा वह मूंछों वाला ?' दूसरा बाबू बोला।

'हां, हां वही।'

'क्यों आया वह यहां ?' पहला बोला।

'जी ?......जी ? बस यूं ही। तंग करने।'

'क्या मतलब ?' तीसरे बाबू ने दिलचस्पी ली।

'क्या बताऊं ? जब से मैंने उसे पैसे देने बन्द किये हैं, तब से ही वह बुरी तरह मेरे पीछे पड़ा हुआ है। रास्ते भर न जाने उसके कितने चमचे मेरे पर बेहूदे फिकरे कसते रहते हैं। एक माह से जीना हराम कर रखा है।'

'छोड़ तो तुमने उसे कभी से रखा है।' दूसरा बोला।

'पर पैसे तो पिछले माह से ही देने बन्द कर रखे हैं।'

'पैसे ? कैसे पैसे ? जब दिल का ही सम्बन्ध न रहा तो पैसे का कैसे रहा ?' तीसरा बोला।

'अरे तुम नहीं जानते। साला पैसों का भूखा है। सोचा टुकड़ा देती रहूं। पर पिछले माह जब पड़ोस के एक लड़के ने मुझे यह नेक सलाह दी कि उसे पैसे देना बिलकुल बन्द कर दो तो मैंने न दिये। तब से हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ा हुआ है।'

'आज यहां क्यों आया है?' पहले ने पूछा।

'पैसे लेने। और क्यों? पहली तारीख जो है।······देखो कोई आ रहा है।······'

'तुम घबराओ मत।' पहले ने सान्त्वना भरे स्वर में कहा–'वह यहां नहीं आ सकता।'

'क्या चूहे का सा दिल पाया है तुमने भी।' तीसरा मुट्ठी भींचता हुआ बोला–'हम साले का भुर्ता बना देंगे।'

'हमारे होते हुए कोई तुम्हें टेढ़ी आंख से भी देख ले तो हम उसकी आंखें फोड़ देंगे।' दूसरा बोला।

'आप लोगों का प्रेम ही तो है, जो मुझे हिम्मत बधाए हुए है।'

कुछ देर तक खामोशी रही। फिर एकाएक वह बोली–'देखो। देखो! खट् खट् स्वर हो रहा है। लगता है वह आ रहा है। कहीं वह तो······।'

'कमाल है।' दूसरा बोला–'जिस दिन उसने, तुम्हें घर से निकाला था तभी तुम इतना नहीं घबरा रही थीं। पर······'

'अरे तब तो किसी ने मुझे आश्वासन दे दिया था कि वह मेरे घर किसी तरह की आंच न आने देगा।'

'पर सुना था उसने भी तुम्हें धोखा दिया।'

'हां। दो वर्ष तक दूसरा भी चूसता रहा मुझे। धन से, तन से।'

'फिर?'

'फिर जा घुसा वह अपनी बीवी के लहंगे में, जिसका उस कभी जिक्र भी नहीं किया था।'

सब खिलखिलाकर हंस पड़े।

अभी हंसी का दौर समाप्त भी न हुआ था कि एक चपरासी ने वहां प्रवेश कर कुछ तुनक कर कहा—'क्यों शोर मचा रखा है ? साहब पूछ रहे हैं।'

'वाह रे इनक्वायरी ऑफिसर।' पहला बोला—'तुझे पता नहीं है कि……।'

'मूंछों वाला आया हुआ है।'

'उसकी क्या पूछो। बेटा साहब के पास बैठा हुआ है। मूंछें मरोड-मरोड कर बातें कर रहा है। क्या शरीर है मेरे शेर का—भारी-भारी। और आंखें। बस पूछो मत। लगता है जैसे दो अंगारे हैं। वास्तव में शहर का दादा है।'

'अरे उस दादा की तो दादागिरी झाड़नी है।' तीसरा बोला।

चपरासी हंसा—'खूब। कहां हाथी और कहां चींटी……।'

पहले ने आंख मारी। चपरासी संभला। अपनी छोटी छोटी मूंछें मरोड़ कर बोला—'साला जरा ऐंडा बैंडा बोला तो मैं उसकी मूंछ उखाड़ दूंगा।'

सब हंस पड़े। लेकिन वह कुछ ही पलों पश्चात गम्भीरता से बोली—'देखो वह साहब के साथ भीतर अवश्य आयेगा।'

'फिर वही चिंता।……आयेगा तो हम चारों उसे और साहब को खिड़की से बाहर फेंक देंगे।' दबी जुबान में तीसरा हाथ ऊंचा करके बोला।

वह मुसकराई। अन्य तीनों सुनने वाले कर्मचारियों ने होंठों पर हाथ रख कर अपनी हंसी छुपाई।

सच हुआ। दो बाबू चाय पीने के लिये कुर्सी से उठे। तभी वह बोली—'आज हम सब लोग यहीं बैठ कर चाय पीलें तो कैसा रहे?'

'कुछ बुरा नहीं।' एक बोला—'कहो तो मूँछ वाले को भी शामिल......।'

'शैतान कहीं के।' उसने उसकी पीठ पर हल्की चपत मार कर मुसकराते हुए कहा। और इसके साथ साथ सबकी हंसी का एक मिश्रित फव्वारा फूट पड़ा। कुछ देर बाद चपरासी ने चाय व नाश्ता सबके सामने लाकर रख दिया। और यह खुशखबरी सुनाई—'मूँछों वाला चला गया है। साहब ने साले को बुरी तरह से फटकारा और आगे के लिये चेतावनी दे दी कि अब कभी आफिस में प्रवेश किया तो पुलिस को रिपोर्ट कर दूँगा।'

'वेरी गुड।' वह उछली। बोली—'जा मेरे एकाउन्ट में से दो दो पीस मिठाई के और ले आ।'

चपरासी फुर्ती से बाहर को लपका।

चाय की चुस्कियों के बीच वह बोली—'कहीं रास्ते में उसने रोक लिया तो?'

'उसकी ऐसी की तैसी। हम सब मर गए क्या?' तीसरा बोला।

'सब साथ चलेंगे।' चपरासी बोला।

'क्यों नहीं। क्यों नहीं। देवी जी को घर के भीतर तक घुसकर छोड़ेंगे।' पहला बोला।

'बिना चाय के?' दूसरे ने चुस्की ली।

सब खिलखिला कर हंस पड़े। उस बीच वह बोली—'क्यों? बिना चाय के कैसे? उसके लिये तो कहने की आवश्यकता ही नहीं।'

'कोरी चाय?' तीसरा आंखें मटकाते हुए बोला।

'जो चाहो।' वह हंस पड़ी।

शाम हुई। आफिस बन्द हुआ। आगे आगे वह। पीछे-पीछे चारों कर्मचारी, कानाफूसी करते हुए चल पड़े।

मंजिल आने में अभी देर थी कि सबको एकाएक कुछ दूरी पर वह मूँछों वाला दिखाई दिया। वह तो पीठ मजबूत देख कर, साहस कर, पर्स को और मजबूती से पकड़ कर आगे बढ़ने लगी, लेकिन जैसे ही मूँछों वाले ने उसके पर्स पर हाथ रक्खा तो उसने घबरा कर, विश्वास से, पीछे को देखा। पर वहां मैदान साफ देखकर उसे लगा, जैसे वह युगों से अकेली है और युगों तक अकेली रहेगी।